इकाई 1 भारत: प्राकृतिक विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास
  1.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियाँ
  1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क
1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन
1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं
  1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश
  1.4.2 सिन्धु का मैदान
  1.4.3 गांगेय उत्तरी भारत
  1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत
  1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत
  1.4.6 सुदूर दक्षिण
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- किसी देश के इतिहास के अध्ययन के लिए इसके भौगोलिक लक्षणों और विशेषताओं की जानकारी आवश्यक क्यों है ?
- इतिहास के एक विद्यार्थी के रूप में प्राकृतिक विशेषताओं को हम किस तरह देखते हैं,
- पर्यावरण, भूगोल और इतिहास के बीच क्या सम्बन्ध है,
- भारतीय उपमहाद्वीप में ऐतिहासिक विकास का स्वरूप असमान क्यों है।

1.1 प्रस्तावना

बिना भूगोल के इतिहास प्राय: अधूरा रहता है और अपने एक प्रमुख तत्व से वंचित हो जाता है। यानी स्थान की अवधारणा के अभाव में इतिहास अपने लक्ष्य से भटक सकता है। यही कारण है कि इतिहास को मानव जाति के इतिहास और पर्यावरण के इतिहास, दोनों ही रूपों में देखा जाता है। इन दोनों को अलग करना कठिन है। मानव इतिहास और पर्यावरण का इतिहास दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मिट्टी, वर्षा, वनस्पति, जल-वायु और पर्यावरण मानव संस्कृतियों के उद् विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वस्तुत: मानव प्रगति का सार प्रकृति को नियन्त्रित करके मानव जीवन को बेहतर बनाने में है। इस सम्बन्ध में तकनीकी प्रगति पर्यावरण को अपने नियंत्रण में लाने में मनुष्य की मदद करती है। मनुष्य प्रभावशाली ढंग से अपने पर्यावरण पर नियंत्रण स्थापित करने में इतिहास के बहुत आगे के चरण में ही सफल हो पाया। अत: जब हम अपने अतीत को समझने का प्रयास करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस भूगोल, पर्यावरण और उन प्राकृतिक क्षेत्रों को समझने और जानने का प्रयास करें जिन्होंने भारतीय इतिहास को प्रभावित किया। इस इकाई में हम आपको भारतीय उपमहाद्वीप की उन प्राकृतिक विशेषताओं से अवगत कराने का प्रयास करेंगे जिनका कि भारत के ऐतिहासिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास

मिट्टी, स्थलाकृति, वर्षा और जलवायु की विविधता ने अलग-अलग प्रकार के अनेक ऐसे क्षेत्र बनाए हैं जिनके प्राकृतिक लक्षण और पहचानें भी अलग-अलग हैं। प्राकृतिक क्षेत्र सांस्कृतिक क्षेत्रों के अनुरूप होते हैं। इन भिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास ही भिन्न प्रकार का रहा है। तात्पर्य यह है कि ये क्षेत्र भाषा बोली पोशाक, फसल, जनसंख्या घनत्व, जाति, संरचना आदि की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार जैसे कुछ क्षेत्रों में, यानी गंगा घाटी के उपजाऊ मैदानों में जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक है। जबकि पठारी मध्य भारत की बसावट काफी छितरी हुई है। इसी प्रकार मगध, कौशल, अवन्ति, महाराष्ट्र, आन्ध्र कलिंग और चोल देश जैसे कुछ क्षेत्र प्रारंभ में विकसित क्षेत्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रदेशों के उद्‌भव की प्रक्रिया असमान रही और विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ जो मुख्य रूप से भूगोल और पर्यावरण से संबंधित थीं और उनसे प्रभावित थीं। एक अन्य उदाहरण में हम देखते हैं कि गेहूं पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोगों का मुख्य भोजन है जबकि बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे पूर्वी भारत के प्रदेशों के लोगों का मुख्य भोजन और वहां की मुख्य फसल चावल है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि:

- विभिन्न फसलों के प्राकृतिक वास क्षेत्र भिन्न होते हैं।
- ये फसलें विशेष प्राकृतिक परिस्थितियों में उगती हैं और समय के साथ बाद में ये फसलें उस स्थान विशेष के लोगों की भोजन सम्बन्धी आदतों को प्रभावित करती हैं।

इसी प्रकार सिंचाई के साधन भी अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग हैं।

- नदियां और नहरें उत्तर भारत में सिंचाई का सर्वाधिक प्रमुख साधन रहे हैं।
- प्राकृतिक तालाब पूर्वी भारत में बहुत उपयोगी रहे हैं।
- जलाशयों द्वारा सिंचाई ने दक्षिण भारत की कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन भिन्नताओं का अर्थ यह नहीं है कि पूर्वी या दक्षिण प्रदेशों में नदियों का महत्व नहीं रहा है। बल्कि इनसे जो बात सामने आती है वह यह है कि विभिन्न प्रदेशों में जल संसाधनों में वृद्धि के लिए लोग विभिन्न तरीके अपनाते हैं। एक क्षेत्र विशेष में अपनाया गया तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि वह उस क्षेत्र के लिए कितना उपयोगी है।

भूगोल और पर्यावरण, वस्त्र शैलियों के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, हम कश्मीरी, राजस्थानी तथा तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के वस्त्र और उनके पहनने ओढ़ने के तरीकों की तुलना कर सकते हैं। विभिन्न प्रदेशों की वस्त्र शैलियों पर उन प्रदेश की जलवायु और पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गंगा के मैदान और डेल्टा उन्नत संस्कृतियों के जन्म स्थान रहे हैं, और यहां उनका युगों तक पोषण भी हुआ जबकि मध्य भारत के पर्वतीय इलाकों में अलग-अलग क्षेत्रों के आदिवासी लोगों की अच्छी बसावट रही है। इस तरह जब नदियों के मैदानों में भरपूर प्राकृतिक सम्पदा रही है और मैदानी लोगों का अपना एक विशिष्ट जीवन रहा है, वहां अलग-अलग क्षेत्रों में बसे लोगों का जीवन अन्य भू-क्षेत्रों में हुई प्रगति से अप्रभावित रहा। इसलिए भारतीय उपमहाद्वीप की वस्त्र शैली से संबंधित या भोजन सम्बन्धी आदतों या संस्कृतियों से सम्बद्ध विविधताओं के सहअस्तित्व को यहां के प्राकृतिक भूगोल के संदर्भ में ही ठीक से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा पोषित क्षेत्रीय भिन्नताएं और उनसे संबंधित भिन्न क्षेत्रीय पहचानें भारतीय इतिहास में स्थायी अखिल भारतीय राज्यों के उदय के मार्ग में बाधा बनी रही हैं। समूचा भारतीय उपमहाद्वीप कभी भी एक राजनीतिक इकाई नहीं रहा। यह बात मौर्य साम्राज्य दिल्ली सल्तनत, मुगल साम्राज्य और साथ ही ब्रिटिश भारत पर समान रूप से लागू होती है। साथ ही यहां यह बताना भी आवश्यक है कि हालांकि भौगौलिक संरचनागत क्षेत्रीय विविधताओं ने हमारे इतिहास में अखिल भारतीय राज्यों के विकास में बाधा पैदा की फिर भी इन विविधताओं ने किसी भी काल में विभिन्न राष्ट्रीयताओं को जन्म नहीं दिया।

भारत के प्राकृतिक क्षेत्र

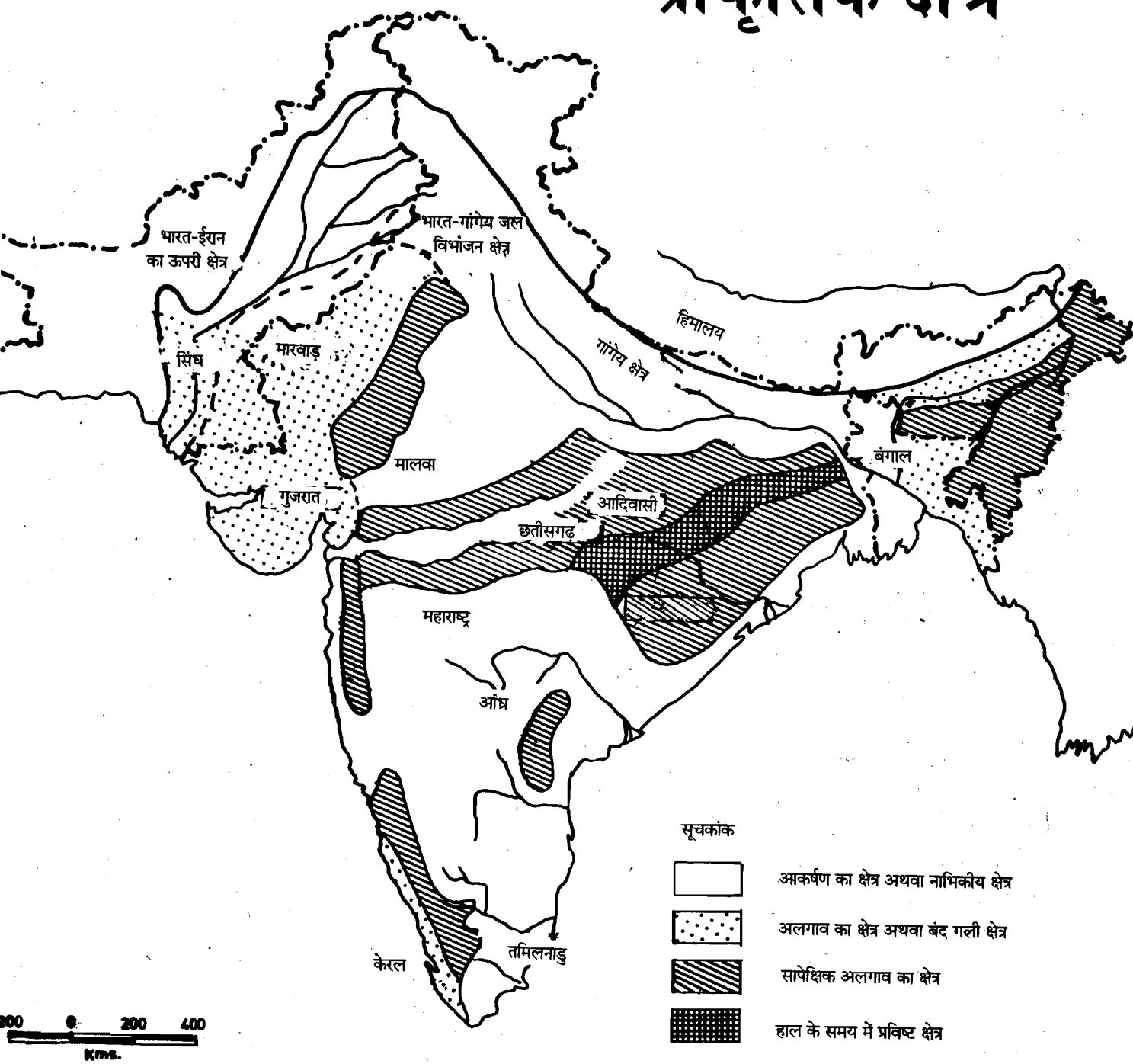

मानचित्र 1.

1.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियां

प्राकृतिक भूगोल मानव बस्तियां और बसावट की शैलियों का परस्पर सम्बन्ध एक और ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, सिंध प्रदेश आज अपेक्षाकृत गर्म और शुष्क है क्योंकि इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी हम जानते हैं कि अतीत में इसी क्षेत्र के अधिकांश भागों में हड़प्पा की सभ्यता का विकास हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि उस समय इस क्षेत्र की जलवायु नम रही होगी और वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती होगी, जिसके कारण यहां उच्चस्तरीय सभ्यता का विकास हो सका और लम्बे समय तक यह सभ्यता बनी रह सकी। कुछ विद्वानों द्वारा यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण प्राकृतिक वनस्पति के क्षेत्र को नुकसान पहुँचा और साथ ही शुष्क जलवायु पैदा होने से लोगों के जीवन-निर्वाह का आधार ही खतरें में पड़ गया। इस प्रकार यह सभ्यता नष्ट हो गई (इस विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए देखें खंड- 2 इकाई- 9)।

अनुपयोगी भौगोलिक स्थितियों और भूमि तथा संसाधनों पर पड़ने वाले संभावित जनसंख्यात्मक दबाव ने लोगों को सभ्यता के इस केन्द्र से निकलने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार यह सभ्यता धीरे-धीरे नष्ट हो गई।

दूसरी ओर मगध साम्राज्य की सफलता और इस साम्राज्य द्वारा स्थापित किया गया राजनीतिक प्रभुत्व हमें आश्चर्य में डाल देता है। इसके क्या कारण थे ? यह तर्क दिया जा सकता है कि इस साम्राज्य की स्थापना में कई तत्व सहयोगी बने:

- अत्यधिक उपजाऊ जमीन,
- पर्याप्त वर्षा और उससे होने वाली धान की वार्षिक अच्छी फसल,
- लोहे की खानों तथा छोटा नागपुर पठार के पत्थर और लकड़ी के स्रोतों का निकट होना,
- नदियों द्वारा पर्याप्त संचार और व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराना,
- मानव बस्तियों की निकटता और निरंतरता, जो बहुत कुछ इन प्राकृतिक सुविधाओं के कारण संभव हुई, अत्यधिक जनसंख्या घनत्व की ओर इशारा करती हैं।

संयुक्त रूप से इन तथ्यों ने आसानी से उत्तरी गांगेय मैदान पर विजय प्राप्त करने में मदद दी। वास्तव में इन्हीं कारणों से सिंधु-गांगेय का मैदानी प्रदेश, कृषि उत्पादकता और जनसंख्या की दृष्टि से अन्य प्रदेशों से आगे था। उत्तरी मैदानों की ओर सीमाई विस्तार से उस समय निर्विवाद भारतीय सर्वोच्चता की स्थापना का आधार मिला। इस तरह इस क्षेत्र में एक के बाद एक घटने वाली घटनाओं को एक क्रम में देखा जा सकता है। मगध राज्य का भारत पर अधिपत्य उसकी उत्तरी मैदानों की विजय पर आधारित थी। इन मैदानों की भूमि, वर्षा, वनस्पति, सहज संचार सुविधा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि ने मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने में मदद दी।

मगध के राजनीतिक प्रभुत्व के बढ़ने से इसकी राजधानी पाटलीपुत्र उत्तरी भारत की राजधानी बन गई। साम्राज्यिक राजधानी के रूप में पाटलीपुत्र का महत्व कई शताब्दियों तक बना रहा। पाटलीपुत्र के उत्थान और पतन के अनेक भौगोलिक कारण गिनाए गए हैं। पाटलीपुत्र के इतिहास के प्रारंभिक दिनों में गंगा, सोन और गंडक जैसी नदियां उसे प्राकृतिक संरक्षा प्रदान करती थीं। साथ ही व्यापार और परिवहन की सहज सुविधाएं भी देती थीं। लेकिन प्रथम सहस्त्राब्दि ईसवी के मध्य तक लगातार बाढ़ों के कारण इन नदियों का महत्व कम हो गया। यह सर्व विदित है कि गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में व्यापार की क्षति हुई और नगरों का पतन हुआ गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में उत्तर भारत में व्यापार और वाणिज्य के पतन के साथ मानव गतिविधियों के कम हो जाने और गंगा नदी का मार्ग बदल जाने से इन नदियों की उपयोगिता कम हो गई। इस काल में गांगेय उत्तर भारत में नगरों के पतन के कारणों में भीतरी क्षेत्रों में वनों की कटाई और परिणामत: वर्षा में कमी जैसे भौगौलिक कारण भी बताए गए हैं। हो सकता है कि ये कारण पूरी तरह से सही न हों। फिर भी ये उदाहरण निश्चित रूप से यह बताते हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और भौगौलिक विशेषताओं के बीच सदैव ही निकट सम्बन्ध रहा है।

1.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क

यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्राकृतिक विशेषताओं और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विकास के बीच अन्तर्सम्बन्ध को देखना और समझना एक बात है, परन्तु इतिहास को भौगोलिक नियतत्ववाद के अर्थ में देखना एक पूरी तरह भिन्न बात है। भौगोलिक तथ्यों की जानकारी से सांस्कृतिक विकास को भली प्रकार समझने में मदद मिलती है। इससे विभिन्न प्रदेशों में विकास के अलग-अलग तरीकों और शैलियों को भी समझने में सहायता मिलती है। फिर भी भूगोल और पर्यावरण को एकमात्र या प्रमुख नियामक कारकों के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि अंतत: प्राकृतिक क्षेत्र मात्र संभावनाओं वाले क्षेत्र होते हैं और उन संभावनाओं को मनुष्य अपनी तत्कालीन तकनीकी उपलब्धियों के आधार पर कार्यान्वित करता है। यह कहा जा चुका है कि प्रकृति, विकास का मार्ग तय करती है। जबकि मनुष्य विकास की अवस्था और उसकी गति को तय करता है। इसलिए न तो प्रकृति का प्रभाव स्थायी होता है और न ही मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध ही सुस्थिर हैं। मनुष्य अपने अनुभव और अपने औजारों के बल पर प्रकृति द्वारा लगाई गई सीमाओं और बाधाओं पर विजय प्राप्त करता रहा है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानवीय अनुभव को निरंतर समृद्ध बनाती है और पर्यावरण पर मनुष्य के नियंत्रण की सीमाओं को निरंतर विस्तार देती जाती है। एक समय में जो प्राकृतिक विशेषताएं और पर्यावरण से सम्बद्ध स्थितियां प्रतिकूल प्रतीत होती हैं दूसरे चरण में वे ही समृद्ध संभावनाओं वाली हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, शिकार-जीवी लोग जंगलों के निकट, या जिन्हें आज हम सीमांत क्षेत्र कहते हैं, वहां रहना पसंद करते थे। लेकिन प्रारंभिक किसानों को लोहे आदि के हल इत्यादि के अभाव में स्वयं को गंगा-यमुना दो-आब के पश्चिम में नर्म भूमि तक ही सीमित रहना पड़ा। ये किसान, गांगेय उत्तरी भारत के समृद्ध जलोढ़ मैदानों पर लोहे के आगमन के साथ ही पहुंच सके और तभी वे घनी वनस्पति और भारी तथा उपजाऊ मिट्टी वाली भूमि का दोहन कर सके।

1.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन

अब हम भारतीय उपमहाद्वीप प्राकृतिक लक्षणों के और इन लक्षणों द्वारा निर्मित विभिन्न प्रदेशों की विशिष्टताओं की चर्चा करेंगे। भू-आकृतिक लक्षणों के आधार पर उपमहाद्वीप को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1) हिमालय के पर्वतीय प्रदेश,
2) सिंधु गंगा के मैदान, और
3) प्रायद्वीपीय भारत।

इनमें से प्रत्येक का आगे भी विभाजन किया जा सकता है। यह माना जाता है कि हिमालय पर्वत श्रृंखला की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है। हिमालय की पर्वतीय श्रृंखलाओं के अपक्षय और भूमि कटाव के कारण जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी निरंतर बह कर भारी मात्रा में इन मैदानों में आती है। हिमालय की बर्फ के पिघलते रहने से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र तीन बड़ी नदियों में निरंतर जल प्रवाह बना रहता है। उत्तर भारत का कछारी मैदान लगभग 3200 किलोमीटर तक एक धनुष के आकार में सिंधु के मुहाने से लेकर गंगा के मुहाने तक फैला हुआ है। लगभग 320 किलोमीटर चौड़ाई वाला यह मैदान तमाम संभावनाओं से भरा हुआ है। सिंधु के मैदान में भारतीय उपमहाद्वीप की पहली सभ्यता का विकास हुआ जबकि गंगा के मैदान में ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दि से नगर जीवन, राज्य, समाज और साम्राज्य सम्बन्धी ढांचे का पोषण और विकास हुआ।

उत्तर के मैदान और प्रायद्वीपीय भारत को, एक विशाल मध्यवर्ती क्षेत्र जिसे किसी बेहतर शब्दावली के अभाव में मध्य भारत कहा जा सकता है, अलग करता है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र गुजरात से लेकर पश्चिमी उड़ीसा तक लगभग 1600 किलोमीटर तक फैला हुआ है। राजस्थान की अरावली पहाड़ियां सिंधु के मैदान को प्रायद्वीप से अलग करती हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां और छोटा नागपुर का पठार है जो बिहार, बंगाल

और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है। इस मध्यवर्ती क्षेत्र यानी मध्य भारत को चार उप प्रदेशों में बांटा जा सकता है:

1) उदयपुर और जयपुर के बीच राजपूतों की भूमि,
2) उज्जैन के आस-पास माल्वा का पठार जो प्राचीन समय में अवन्ति के नाम से प्रसिद्ध था।
3) विदर्भ या नागपुर के आस-पास का उप-क्षेत्र, और
4) पूर्वी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का मैदान जो प्राचीन काल में दक्षिण कौशल के नाम से जाना जाता था।

हालांकि सामान्य रूप में इस मध्यवर्ती क्षेत्र में संचार तथा आवागमन कभी भी आसान नहीं रहा फिर भी इन चार प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग उप प्रदेशों के बीच आपस में सम्पर्क बना रहा, तथा मध्यवर्ती क्षेत्र और अन्य भौगोलिक क्षेत्रों के बीच भी सम्पर्क बना रहा।

मध्यवर्ती क्षेत्र या मध्य भारत के दक्षिणी सिरे पर वह भू-रचना शुरू होती है जिसे प्रायद्वीपीय भारत कहा जाता है यह एक प्राचीन भू-भाग है जिसमें स्थायित्व के सभी लक्षण मौजूद हैं। यह भू-भाग पठारी है। इस पठारी चट्टानी संरचना का झुकाव पश्चिम से पूर्व की ओर है। इसमें चार प्रमुख नदियां हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियां हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन नदियों के कारण इस पठारी क्षेत्र में जलोढ़ मैदान बने और इन मैदानों तथा नदियों के डेल्टाओं में मूल आवास क्षेत्रों का विकास हुआ। यहां दीर्घ काल तक सांस्कृतिक विकास की धारा प्रवाहित हुई जो प्राचीन काल से प्रारंभ होकर मध्य काल से होते हुए आधुनिक काल तक निरंतर बहती रही।

मध्य भारत में बहने वाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पर्वतीय मध्य भारत में लम्बी दूरी तय करने के बाद ये नदियां गुजरात में अरब सागर में गिरती हैं। उपमहाद्वीप के इस भाग की प्रमुख विशेषता दक्कन का पठार है। यह उत्तर में विंध्य पर्वत श्रेणियों से लेकर कर्नाटक की दक्षिणी सीमाओं तक फैला हुआ है। महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के भू-भागों में काली मिट्टी विशेष रूप से उपजाऊ है, क्योंकि इसमें नमी बनी रहती है और इस जमीन को स्वहलित भूमि यानी ऐसी भूमि माना जाता है जिसमें जुताई की आवश्यकता नहीं होती। भूमि की इस विशेषता के कारण वार्षिक वर्षा की कमी और सिंचाई सम्बन्धी अन्य कठिनाइयां फसल के लिए बड़ी बाधा नहीं बनतीं। यह भूमि कपास, ज्वार, मूंगफली और तिलहन की अच्छी फसल देती है इसलिए यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि पश्चिम और मध्य भारत में प्रारंभिक कृषि संस्कृतियां (ताम्र पाषाण संस्कृति) इसी क्षेत्र में उदित हुईं। दक्षिण का यह पठार पश्चिम में पश्चिमी घाट तक फैला है और पूर्व में इसकी सीमाएं पूर्वी घाट से लगी हुई हैं। पूर्वी घाट इसको पूर्वी तटवर्ती मैदानों से अलग करता है। मैदान पश्चिम के संकरे मैदानों की तुलना में कहीं अधिक चौड़े हैं। नीलगिरी और कार्डोमोम पहाड़ियां मूल प्रायद्वीपीय संरचना की उत्पत्ति मानी जाती हैं।

बोध प्रश्न 1

1 सही कथन पर (✓) चिह्न लगाइए।
प्राकृतिक भूगोल की जानकारी:

i) विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जीवन शैलियों को समझने में मदद करती है,
ii) अतीत में सांस्कृतिक विकास की प्रकृति को समझने में कोई मदद नहीं करती,
iii) का इतिहास के विद्यार्थी के लिए कोई महत्व नहीं है,
iv) आपको केवल विशेष क्षेत्रों के अध्ययन तक सीमित कर देती है।

2 मगध के उत्थान की उत्तरदायी प्राकृतिक विशेषताओं का उल्लेख करिए। उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

भारत के भूआकृतिक क्षेत्र

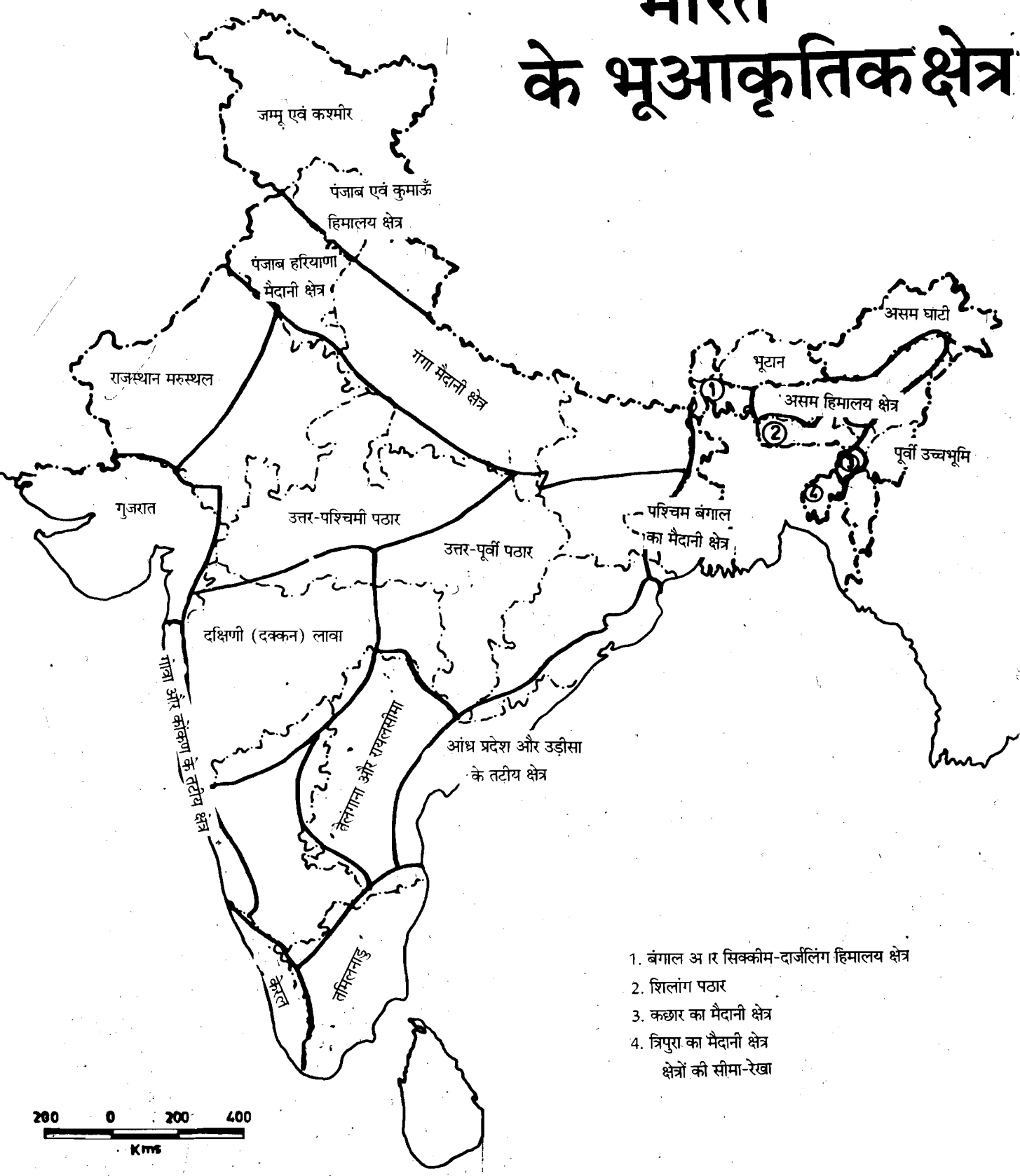

मानचित्र 2.

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

3 रिक्त स्थान भरिए:

i) भौगोलिक तथ्य मगध के . . . (उत्थान और पतन /बाढ़ग्रस्त होने) के कारणों को तय करने में . . . (हमारी मदद करते हैं/हमारी मदद नहीं करते हैं)

ii) मनुष्य प्रकृति को सफलता से नियंत्रित . . . (करता है /करने का प्रयास करता है)

iii) भारत में मूल भू-आकृतिक विभाजन . . . हैं। (पांच /दो /तीन)

iv) मध्यवर्ती क्षेत्र में . . . (मूल भू-आकृतिक/उपक्षेत्र) शामिल हैं।

1.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएं

अभी तक हमने मोटे तौर पर भौगोलिक विभाजनों की विशेषताओं का सामान्य आधार पर विवेचन किया है। अब हम उन विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयों को लेंगे जो आमतौर पर भाषा पर आधारित विभाजनों को पुष्ट करती हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनकी प्राकृतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

1.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश

हिमालय को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है:

- पूर्वी हिमालय
- पश्चिमी हिमालय, और
- मध्यवर्ती हिमालय

पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखला ब्रह्मपुत्र के पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में असम से लेकर दक्षिणी चीन तक फैली हुई है। हालांकि पूर्वी हिमालय पर्वतमाला के बीच से गुजरने वाले मार्ग दुर्गम हैं फिर भी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों में दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण चीन से सांस्कृतिक प्रभावों का आना नहीं रुका। मध्यवर्ती हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं, जो भूटान से चित्राल तक फैली हुई हैं तिब्बत के विशाल पठार की सीमा पर स्थित हैं। भारत और तिब्बत के बीच व्यापार तथा अन्य प्रकार के सम्बन्ध इसी सीमा प्रदेश के माध्यम से बने रहे।

संकरी हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला हिमालय से दक्षिण पश्चिम की ओर प्राचीन गांधार प्रदेश को घेरती हुई अफगानिस्तान में दूर तक फैली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी अफगानिस्तान का गहरा सम्बन्ध साम्य पूर्वी ईरान से है। लेकिन दक्षिण-पूर्वी अफगानिस्तान सांस्कृतिक रूप से नवपाषाण काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप के निकट रहा है। खैबर दर्रा और अन्य दर्रे तथा काबुल नदी इस क्षेत्र को सिन्धु के मैदान से जोड़ते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अफगानिस्तान के इस भाग में स्थित शोर्टुगाई हड़प्पा की सभ्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बाहय केन्द्र था। काबुल और कन्धार जैसे प्राचीन नगर ईरान और भारत के बीच व्यापार मार्गों पर स्थित हैं।

बलूचिस्तान की ओर चलते हुए दक्षिण पश्चिम अफगानिस्तान में रेगिस्तानी हालात काफी प्रखर रूप से सामने आते हैं। इस क्षेत्र में नवपाषाण काल से ही पशुचारण को जीवन के लिये एक लाभदायक अनुकूल नीति के रूप में अपनाया जाता रहा है। बलूचिस्तान का तट-वर्ती क्षेत्र जो कि मकरान कहा जाता है, मानव बस्तियों के लिए कभी भी उपयुक्त क्षेत्र नहीं रहा। उदाहरण के लिए, भारत अभियान से वापस लौटते हुए जब सिकन्दर अपनी सेना के एक भाग को मकरान तट से होकर ले गया तो उसे भोजन और पानी की कमी के कारण भारी जन हानी उठानी पड़ी। यह प्रदेश एक प्रकार का केन्द्रीय स्थल रहा है क्योंकि यहां से एक ओर तो मध्य एशिया और चीन के लिए रास्ते निकलते हैं। तो दूसरी ओर ईरान और सुदूर पश्चिम की ओर रास्ते निकलते हैं।

वे सभी प्रमुख मार्ग, जो अफगानिस्तान होकर भारत के मैदानों को ईरान और मध्य एशिया से जोड़ते हैं, गोमाल, बोलन और खैबर दर्रों से होकर जाते हैं। ऐतिहासिक कालों अथवा उससे भी पहले से व्यापारी, हमलावर और विविध सांस्कृतिक प्रभाव इन सभी प्रमुख मार्गों से होकर भारत आते रहे। यूनानी, शक, कुषाण, हूण और अन्य हमलावर इन्हीं मार्गों से भारत आए। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के अन्य प्रभाव अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक इन्हीं दर्रों से होकर पहुंचे। इस तरह ऐतिहासिक रूप से अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र महत्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र रहे हैं।

1.4.2 सिंधु का मैदान

इन दर्रों से निकलने वाले ये मार्ग सिंधु के उपजाऊ मैदानों की तरफ ले जाते हैं। इस मैदान को दो भागों में बांटा जा सकता है:

- पंजाब, और
- सिंध

पंजाब (इस समय भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित) का शाब्दिक अर्थ है पांच नदियों की भूमि। विस्तृत जलोढ़ मैदान के बीच से बहने वाली सिंधु नदी की पांच सहायक नदियों ने इस क्षेत्र को उपमहाद्वीप का बहु-धान्य प्रदेश बना दिया है। इस मैदान का पूर्वी भाग गंगा के थाले से जा मिलता है। पंजाब विभिन्न संस्कृतियों का मिलन स्थल और उनके परस्पर एकीकृत होने का स्थान रहा है। पूर्व स्थापित संस्कृतियों के तथा बाहर से आने वाले नये तत्व यहां घुल-मिल कर एक होते रहे हैं। पंजाब की सामरिक स्थिति और यहां की समृद्धि सदा ही हमलावरों को आकर्षित करती रही है।

सिंधु घाटी का निचला क्षेत्र और डेल्टा मिल कर सिंध प्रदेश का निर्माण करते हैं। यह प्रदेश उत्तर पश्चिम में बलूचिस्तानी पहाड़ियों और दक्षिण-पूर्व में थार के रेगिस्तान से घिरा हुआ है इस प्रदेश के गुजरात के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है लेकिन यहां की जलोढ़ भूमि बहुत उपजाऊ है। सिंध प्रदेश, सिंधु नदी का प्रदेश है और बड़ी मात्रा में चावल और गेहूं उत्पन्न करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिंधु मैदान में ईसा पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दि के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नागरीय संस्कृति पनपी। इनके दो प्रमुख नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो क्रमश: पंजाब और सिंध में स्थित हैं।

1.4.3 गांगेय उत्तरी भारत

सिंधु के मैदान की तुलना में गंगा का मैदान जलवायु की दृष्टि से अधिक आद्र है। वार्षिक वर्षा जो सिंधु-गंगा विभाजक पर 50 सेंटीमीटर होती है वह बंगाल तक पहुंचते-पहुंचते बढ़ कर दो सौ सेंटीमीटर हो जाती है। गंगा के मैदानी क्षेत्र को तीन उप-क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:

- ऊपरी क्षेत्र,
- मध्य क्षेत्र, और
- निचला क्षेत्र।

पश्चिम और मध्य उत्तर प्रदेश के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में अधिकांश दोआब का इलाका शामिल है। यह संघर्ष और सांस्कृतिक संश्लेषण का क्षेत्र रहा है। हड़प्पा संस्कृति के इस क्षेत्र तक फैले होने के बहुतायत में साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। यह क्षेत्र "चित्रित धूसर या भूरे भांड संस्कृति" का केन्द्र भी था और उत्तर वैदिक काल में हलचल भरी गतिविधियों का केन्द्र इलाहाबाद (प्राचीन प्रयाग) भी दोआब की सीमा पर गंगा और यमुना नदियों के संगम पर स्थित है। गांगेय मैदान का मध्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैला हुआ है। यह वही क्षेत्र है जहां प्राचीन कौशल, काशी और मगध स्थित थे। यह क्षेत्र ईसा पूर्व छठी शताब्दी से नगर जीवन, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा व्यापार का केन्द्र रहा है। इसी प्रदेश ने मौर्य साम्राज्य के विस्तार को आधार प्रदान किया और यह भू-प्रदेश राजनीतिक दृष्टि से गुप्त काल पांचवी शताब्दी इसवी तक महत्वपूर्ण बना रहा।

गंगा के मैदान का ऊपरी और मध्य क्षेत्र भौगोलिक रूप से उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियों और दक्षिण में मध्य भारत की पर्वत शृंखलाओं से सीमाबद्ध होता है। गंगा के मैदान का निचला क्षेत्र बंगाल प्रान्त के साथ फैला हुआ है। बंगाल का विस्तृत मैदान, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है। मैदान के निचले क्षेत्रों में

भारी वर्षा होने से यहां घने जंगल और दल-दल हैं। इनके कारण बंगाल में प्रारंभिक बस्तियों की बसावट में काफी बाधाएं आईं। इस जलोढ़ भूमि की उर्वरता का उपयोग तभी किया जा सका जब लौह तकनीक पर नियंत्रण और उसका प्रयोग अच्छी मात्रा में शुरू हो गया। इस क्षेत्र में मध्य क्षेत्रीय मैदान की नगरीय संस्कृति का प्रवेश अपेक्षाकृत देर से हुआ। यहां के पर्यावरण को देखते हुए तालाब और पोखर प्राचीन समय से ही बंगाल के जीवन में विशिष्ट बने रहे हैं। प्राचीन समय से ही मछली यहां के सभी वर्गों के भोजन का आवश्यक अंग रही है।

अन्य वृहद बसावट वाले क्षेत्रों की तुलना में गंगा का मैदान अनेक घनी बस्तियों वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या घनत्व भी यहां अपेक्षाकृत अधिक रहा है। ईसा पूर्व पहली सहस्त्राब्दि से ही यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता का मुख्य केन्द्र रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्रदेश की सह स्थिति बनी हुई है। बंगाल के मैदान से लगी हुई ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित दूर तक फैली हुई असम घाटी है। यह 600 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में फैली हुई है। सांस्कृतिक रूप से असम बंगाल के निकट है। लेकिन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश उड़ीसा की तरह देर से विकास प्रक्रिया में आने वाला प्रदेश है।

1.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत

मध्य भारत जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एक पूरी तरह भिन्न प्रकार का क्षेत्र है और उसमें कोई भी ऐसा विशेष स्थान नहीं है जिसे केन्द्र स्थान मान कर बात की जा सके। यह एक पर्वतीय प्रदेश है जहां पहाड़ियां अधिक ऊंचाई तक नहीं पहुंचती। प्रपातीय ढाल इस क्षेत्र की पर्वत श्रृंखलाओं को बीच-बीच में खंडित करते हैं और घाटियां इन्हें विभाजित करती हैं। ये पर्वत श्रृंखलाएं सामान्य रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं। लेकिन इस भू-आकृतिक क्षेत्र के उत्तर, पश्चिम भाग में अरावली पर्वत श्रृंखलाएं दक्षिण पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर फैली हुई हैं। अरावली पर्वत श्रृंखलाएं मरू प्रदेश राजस्थान को लगभग दो भागों में विभाजित करती हैं। अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में राजस्थान राज्य का दक्षिण पूर्वी भाग मालवा उप-क्षेत्र का एक अंग है। इस प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है। इसलिए यहां सिंचाई के अभाव के बावजूद अच्छी फसलें हो जाती हैं। इस प्रदेश में ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियां काफी संख्या में फैली हुई हैं। इसकी भौगोलिक अवस्थाओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह प्रदेश हड़प्पा-कालीन समुदायों और मध्य भारत तथा उत्तरी दक्कन के दूसरे ताम्र पाषाण युगीन समुदायों के बीच पुल के रूप में रहा होगा। सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश में उत्तर कालों में, उत्तरी मैदानों की संस्कृति का ही विस्तार हुआ। इस प्रदेश के पूर्व में ऊपरी महानदी क्षेत्र में छत्तीसगढ़ का मैदान एक छोटा उपजाऊ क्षेत्र है। यहां अच्छी वर्षा होती है और धान उगाया जाता है। चौथी-पांचवी शताब्दी से यहां का ऐतिहासिक विकास उसी प्रकार का था जैसा कि पश्चिमी उड़ीसा के ऊँचे नीचे पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ। इन क्षेत्रों में भौगोलिक निकटता के कारण सांस्कृतिक और राजनीतिक आदान-प्रदान होता रहा।

वह अधिकांश भू-भाग जिसे हमने मध्य भारत बताया है, आज मध्य प्रदेश के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश में उत्तर से दक्षिण यात्रा में विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाएं तथा नर्मदा और ताप्ती नदियां रुकावट बनती हैं। मध्य भारतीय क्षेत्र, जिसमें विशेष रूप से दक्षिण बिहार, पश्चिम उड़ीसा और पूर्वी मध्य प्रदेश आते हैं, आदिवासी बहुल क्षेत्र है। फिर भी यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें बाह्य तत्वों के प्रवेश की गति धीमी और निरंतर रही। इस प्रदेश के आदिवासी निकटवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक प्रभाव में आकर प्रारंभिक ऐतिहासिक कालों से या कहें कि गुप्त काल से ही, भारतीय समाज के प्रमुख जाति-कृषक आधार वाले ढांचे से जुड़ते रहे।

गुजरात मध्य भारत क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा हुआ है। सौराष्ट्र अनर्त (उत्तरी गुजरात) और लता (दक्षिण गुजरात) अनर्त की विशेषता यहां अर्ध शुष्क वायु प्रवाहित मिट्टी है तो लता में पश्चिम तट का उपजाऊ क्षेत्र शामिल है। गुजरात का मध्यवर्ती प्रायद्वीप काठियावाड़ कहलाता है। इस प्रदेश का एक और प्राकृतिक भाग कच्छ के रण का निचला इलाका है। मानसून के दिनों में कच्छ का रण बादली क्षेत्र में बदल जाता है। इस प्राकृतिक उप-विभाजन के बावजूद गुजरात की अपनी सांस्कृतिक पहचान और एकता रही है क्योंकि यह प्रदेश विंध्य पर्वत श्रृंखलाओं और पश्चिमी घाट से पूर्व में और उत्तर में मरुस्थल से सीमाबद्ध है। हालांकि यह एक अलग-थलग क्षेत्र प्रतीत होता है किन्तु

वास्तव में यह हड़प्पा कालीन समय से ही निरंतर प्राचीन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। सौराष्ट्र में इसकी सिंधु नदी के साथ भौगोलिक निकटता के कारण हड़प्पा की सभ्यता का विस्तार हुआ। यह क्षेत्र प्राय: सिंध तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्र और भारत के बीच संक्रान्ति का क्षेत्र रहा है यहां का मैदान नर्मदा, ताप्ती, साबरमती और माही नदियों द्वारा मध्य भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं से लाई गई कछारी भूमि से समृद्ध है। अपनी संरक्षित स्थिति और लम्बी तट रेखा के कारण गुजरात चार हजार वर्षों से भी अधिक समय से तटीय (समुद्र तटीय) और विदेशी व्यापार का केन्द्र रहा है। मध्य भारत पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी छोर पर गंगा के डेल्टा के दक्षिण पश्चिम में उड़ीसा के तटवर्ती मैदान हैं। हालांकि इसी तट पर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली कुछ अन्य नदियां भी हैं। ये तटवर्ती मैदान पर्वत श्रृंखलाओं का ही एक विस्तार है और जैसा कि छत्तीसगढ़ के मैदान के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, इसके कुछ प्राकृतिक लक्षण भी वैसे ही हैं। इस तरह उड़ीसा में दो भू-आकृतिक भाग हैं जो विकास की असमान प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। समृद्ध कृषि आधार वाला उपजाऊ तटवर्ती मैदान मानव गतिविधि का स्थल और सामाजिक सांस्कृतिक विकास का केन्द्र रहा है। उड़ीसा ने अपनी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान देर से पहली शताब्दी में बनायी थी।

1.4.5 प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत की सीमाएं इसको घेरने वाले तटवर्ती मैदानों और दक्कन के पठार से निर्धारित होती हैं। तटवर्ती मैदान पूर्व में और सुदूर दक्षिण में चौड़े हैं, जबकि पश्चिम में ये संकरे हैं। बंबई और पालघाट के बीच का मैदान सर्वाधिक संकरा है। दक्कन का पठार तीन प्रमुख भागों में बंटा हुआ है। ये भाग महाराष्ट्र, आंध्र और कर्नाटक राज्यों में पड़ते हैं। महाराष्ट्र में अन्य क्षेत्रों के अलावा दक्कन के पठार का उत्तरी भाग शामिल है। सुदूर दक्षिण के लिए सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार दक्कन द्वारा होता रहा है। और ऐसा इसलिए संभव हुआ होगा क्योंकि पश्चिम भाग को छोड़ कर वहां और घने जंगल नहीं हैं। महाराष्ट्र और आन्ध्र के बीच सीमा प्राकृतिक रूप से निर्धारित हुई प्रतीत होती है क्योंकि यह सीमा रेखा उपजाऊ काली मिट्टी के वितरण के आधार पर बनी है। यानी इस सीमा के इस ओर महाराष्ट्र में उपजाऊ काली मिट्टी है तो सीमा के उस पार तैलंगाना में लाल मिट्टी है जो नमी सोखने में सक्षम नहीं होती है। इसलिए तैलंगाना तालाबों तथा अन्य प्रकार के कृत्रिम सिंचाई के साधनों का क्षेत्र रहा है। प्रारंभिक बस्तियों के विकास पर पर्यावरण सम्बन्धी भिन्नताओं का प्रभाव इस क्षेत्र में जितने रूप में सामने आता है उतना अन्य क्षेत्रों में नहीं। दक्षिण पश्चिम आन्ध्र के प्रारंभिक नव-पाषाण युगीन लोगों ने अनुकूल व्यवहार नीति के रूप में पशु चारण को अपनाया तो उत्तरी दक्कन ताम्र-पाषाण युगीन मानव समुदायों ने कृषि को अपना उद्यम बनाया।

कर्नाटक में दक्षिण-पश्चिमी दक्कन शामिल है। कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रों को छोड़ कर दक्कन लावा का फैलाव यहां तक नहीं हैं इसके अलावा पश्चिम घाट और पश्चिमी तटवर्ती मैदान का एक भाग इस राज्य में शामिल है राज्य दक्षिण भाग में अपेक्षाकृत अधिक पानी है और यह क्षेत्र मानव बस्तियों के लिए उत्तर की तुलना में अधिक उपयुक्त है। महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच विभाजन रेखा किन्हीं विशेष प्राकृतिक दशाओं को नहीं दर्शाती। इस क्षेत्र में पर्यावरण द्वारा पैदा की गई बाधाओं की पर्याप्त पुष्टि इस क्षेत्र के नव-पाषाण युगीन लोगों के अपेक्षाकृत अपर्याप्त सांस्कृतिक अवशेषों से होती है।

चार दक्षिण भारतीय राज्यों में आन्ध्र विशालतम है। इसमें तेलगाना, उपजाऊ तटवर्ती मैदान, रायल सीमा जैसे अनेक उप क्षेत्र शामिल हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राज्य का उत्तर-पश्चिमी भाग तेलंगाना कहा जाता है। यहां की ललछोंहा मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है और यहां की मुख्य फसलें, ज्वार, दलहन और तिलहन हैं। पूर्व में पूर्वी घाट और तटवर्ती मैदान का एक भाग उत्तर में उड़ीसा की सीमा पर महेन्द्र गिरि के निकट से लेकर दक्षिण में तमिलनाडु तक, जिसका अधिकेन्द्र कृष्णा-गोदावरी की संयुक्त डेल्टा है, आन्ध्र-प्रदेश में शामिल है। यह एक चावल प्रधान क्षेत्र है। दोनों नदियों के बीच का तटवर्ती क्षेत्र जो प्राचीन समय में वैनगी नाम से जाना जाता था धान का प्रमुख उत्पादन केन्द्र रहा है। कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच रायचूर दोआब की तरह, इस क्षेत्र के लिए भी प्राचीन ऐतिहासिक कालों में निरंतर संघर्ष होते रहे।

1.4.6 सुदूर दक्षिण

दक्कन का पठार सुदूर दक्षिण में नीलगिर और कार्डामोम पहाड़ियों जैसे अलग-अलग खण्डे में विभाजित हो जाता है। ये पहाड़ियां मोटे तौर पर पूर्वी और पश्चिमी तटवर्ती मैदानों को विभाजित करती हैं। दक्षिण में विस्तृत पूर्वी तटवर्ती मैदान और इससे जुड़े भीतरी प्रदेश तमिलनाडु में आते हैं। तमिलनाडु के तटवर्ती जिलों में भारी मात्रा में चावल पैदा होता है। कावेरी का मैदान और इसका डेल्टा इस क्षेत्र का अधिकेन्द्र है। इस क्षेत्र की नदियाँ मौसमी हैं इसलिए यहां के किसान पल्लव चोल कालों से ही सिंचाई के लिए तालाबों पर निर्भर रहते आए हैं। असिंचित क्षेत्रों में ज्वार, दलहन और तिलहन की फसलें होती हैं। यह जानना रोचक है कि इन पारिस्थितिक विविधिताओं का उल्लेख, जिनके कारण विविध वैकल्पिक जीवन शैलियाँ अस्तित्व में आईं, इस भूमि के प्राचीनतम साहित्य यानी संगम साहित्य में प्राप्त होता है। भौगोलिक, भाषायी और सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश की अपनी निजी पहचान बनी है।

पश्चिमी तटवर्ती मैदान भी सुदूर दक्षिण में मालावार यानी आज के केरल राज्य तक फैला हुआ है। केरल में धान तथा अन्य फसलों के अलावा काली मिर्च तथा अन्य मसालों का उत्पादन भी होता है पश्चिम के साथ केरल इन मसालों का व्यापार उत्तर मौर्य काल से ही होता आया है। तमिलनाडु की ओर से केरल में प्रवेश पालघाट घाटी के द्वारा और पश्चिमी घाट के दक्षिणी छोर से संभव है। भूमि से अपेक्षाकृत अलग-थलग केरल राज्य, समुद्र की ओर से पूरी तरह खुला हुआ है। यह एक रोचक सत्य है कि भारत में ईसाई प्रभाव और बाद में मुस्लिम प्रभाव समुद्र के माध्यम से ही आया। यह ध्यान देने योग्य है कि केरल और तमिलनाडु, दोनों ही प्रदेश गंगा के मैदान की तरह घने आबाद हैं।

बोध प्रश्न 2

1 निम्न में से कौन से कथन सही (✓) अथवा गलत (×) हैं:

i) पूर्वी हिमालय क्षेत्र चीन के सांस्कृतिक प्रभावों से अछूता रहा।
ii) हड़प्पा पंजाब में अवस्थित है।
iii) गंगा के मैदान में सबसे अधिक मानव बस्तियां फली फूलीं।
iv) दक्कन पठार का तटवर्ती मैदान बम्बई और पालघाट के बीच बहुत चौड़ा है।

2 खाली स्थान भरिए:

i) हिमालय को ..... (पांच /तीन) मुख्य ..... (क्षेत्रों /इकाइयों) में बांटा जा सकता है।

ii) कच्छ का रन ..... (वर्षा /शरद) ऋतु के दौरान ..... (समुद्र /दलदल) में बदल जाता है।

iii) सुदूर दक्षिण की असिंचित भूमि .... (गेंहू /जौ /ज्वार) और ..... (तिलहन / चावल) पैदा करती है।

iv) तेलंगाना ..... (नदियों /तालाबों) की और कृत्रिम ..... (खेती /सिंचाई) की भूमि हो गई है।

1.5 सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राकृतिक विभाजन मोटे तौर पर भाषाई क्षेत्रों के अनुरूप है। इन भाषाई क्षेत्रों ने समयानुकूल विकसित होकर अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान कायम की। विभिन्न प्राकृतिक भागों के लोगों को विभिन्न रुचियां, भोजन संबंधी आदतें और वस्त्र शैलियां हैं। ये आदतें और रुचियां विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाओं के अन्दर विकसित हुए संसाधनों के उपयोग के तरीके, पर्यावरणीय व्यवस्था और जीवन के ढंग से पैदा हुईं। बृहद क्षेत्रों के अन्दर और दो बृहद क्षेत्रों के बीच जो असमान विकास हुआ उसे इन क्षेत्रों में उपलब्ध या अनुपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में, और मानवीय तथा तकनीकी हरित क्षेत्र के आधार पर समझा जा सकता है। देश की प्रमुख नदीयां घाटियां, जिनमें प्रति वर्ष वर्षा का औसत पचास

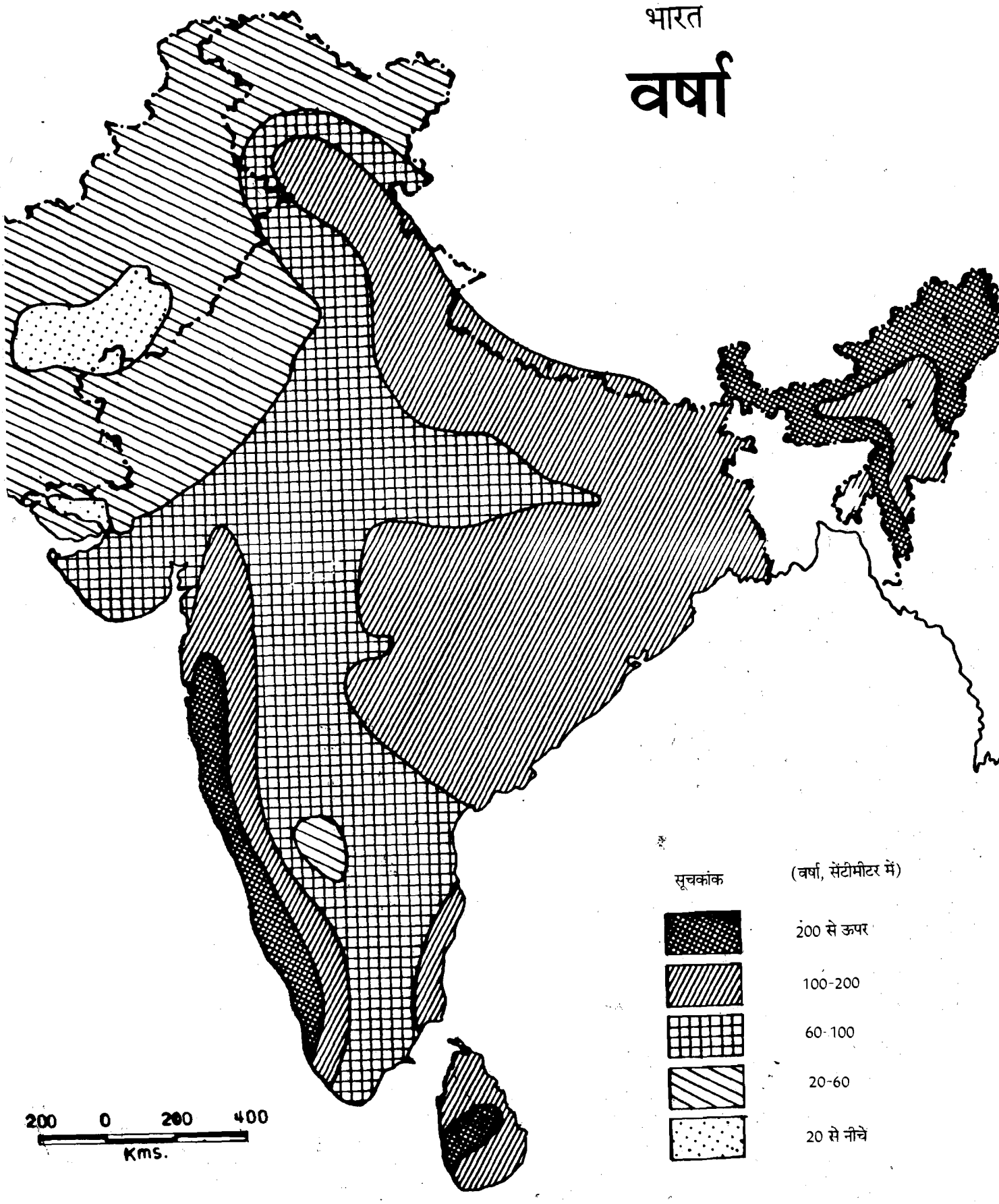
भारत
वर्षा
सूचकांक
(वर्षा, सेंटीमीटर में)
200 से ऊपर
100-200
60-100
20-60
20 से नीचे
200 0 200 400
Kms.

मानचित्र 3.

भारत

वनों के प्रकार

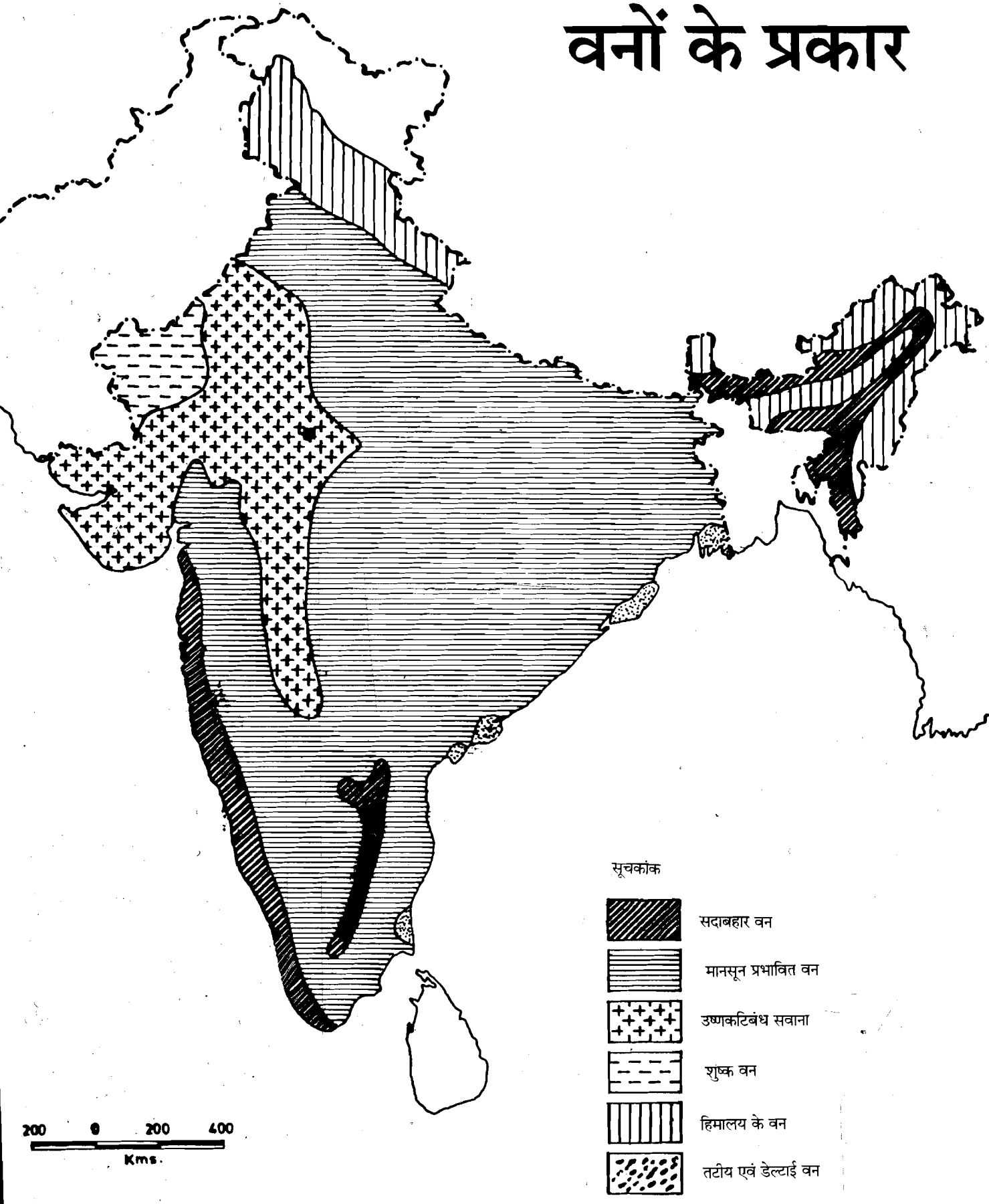

मानचित्र 4.

और सौ सेंटीमीटर के बीच रहा है और जो बड़े पैमाने पर कृषि समुदायों को पोषण प्रदान करने में सक्षम रही हैं, वे युगों से पूरी तरह आबाद रही हैं। कम या अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुर्वरता और घनी वन्य वनस्पति की समस्याओं से ग्रस्त रहे हैं। और ऐसे क्षेत्र कृषि के लिए अधिक उपयुक्त नहीं रहे हैं। उपमहाद्वीप में इष्टतम वर्षा वाले क्षेत्र और कृषि के लिए साफ किए गए क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सह-सम्बन्ध पाया गया है (मानचित्र देखिए)। ऐतिहासिक प्रक्रियाओं क विकास सभी जगह न तो संतुलित हुआ है और न एक-जैसा।

तर में हिमालय और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में समुद्री सीमाओं से घिरा र ीय उपमहाद्वीप एक बन्द और अलग क्षेत्र होने का आभास कराता है। मगर इन सीमाओं पार से सांस्कृतिक प्रभावों का आदान-प्रदान होता रहा, और इस महाद्वीप के पश्चिम, चम-एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ समुद्र मार्ग से सम्बन्ध बने रहे। आन्तरिक रूप से मध्य भारत का ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम पहाड़ी प्रदेश, देश के विभिन्न प्रदेशों के बीच विचारों और प्रभावों के अदान-प्रदान के मार्ग में कमी भी वास्तविक बाधा नहीं बन सका। निष्कर्ष रूप म कहा जा सकता है कि हालांकि भूगोल और पर्यावरण ऐतिहासिक विकास को पूरी तरह नियत नहीं करते, फिर भी उसे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करते हैं।

1.6 शब्दावली

अनुकूलन नीति: मनुष्य द्वारा अपनाई गई वह नीति या ढंग जिससे वह नए पर्यावरण या संस्कृति के साथ सामंजस्य करता है उसके अनुकूल स्वयं को ढालता है।

जलोढ़ मैदान: नदी द्वारा लाई गई मिट्टी या बालू आदि के इकट्ठा होने से बना मैदान।

जाति-कृषक आधार: प्रारंभिक व्यवस्थित कृषि-समाज से सम्बन्धित, जिसके सदस्य सामाजिक रूप से जाति-आधार पर वर्गीकृत थे। ये सदस्य अपने समाज के खेती करने वाले सदस्यों की पैदावार पर निर्भर रहते थे।

ताम्र पाषाण युगीन बस्तियां: उस युग का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियां जिसमें पत्थर और तांबे दोनों से ही निर्मित वस्तुओं का उपयोग होता था।

सीमान्त क्षेत्र: एक कृषिक बस्ती के बाहर का क्षेत्र सामान्य रूप से ऐसे क्षेत्रों का कुछ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध मुख्य बस्ती से होता था। उदाहरण के लिए, ऐसे सीमान्त क्षेत्रों में रहने वाले खानाबदोश मुख्य बस्ती को दूध, भेड़, खाल, ऊन आदि की आपूर्ति किया करते थे।

भौगोलिक निकटता: प्राकृतिक रूप से निकटवर्ती या साथ-साथ लगे क्षेत्र।

भाषाई विभाजन क्षेत्र: प्राकृतिक क्षेत्र का उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर विभाजन।

तटवर्ती: समुद्र तट पर स्थापित।

चित्रित भूरे या धूसर भांड संस्कृति: गंगा दोआब क्षेत्र में प्राप्त भूरे रंग के बर्तनों या भांडो से सम्बन्धित संस्कृति।

पशुचारण: वह पेशा या व्यवसाय जिसके तहत पशु पाले जाते हैं।

भू-आकृतिक क्षेत्र या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में: भारत के भू-आकृतिक या प्राकृतिक क्षेत्रों के अर्थ में।

तकनीकी हस्तक्षेप: एक क्षेत्र की संसाधन क्षमता के विकास में नई तकनीकों और जानकारियों का प्रभाव।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (1)

2 आपके उत्तर में भारी उपजाऊ भूमि, सिंचाई सुविधाएं, पत्थर लकड़ी जैसे विभिन्न संसाधनों की निकटता आदि को शामिल किया जाना चाहिए। देखिए उप-भाग 1.2.1।

3 i) उत्थान और पतन, हमारी मदद करते हैं
ii) करने का प्रयास करता है
iii) तीन
iv) उपक्षेत्र

बोध प्रश्न 2

1 i) × ii) ✓, iii) ✓, iv) ×

2 i) तीन, भागों ii) वर्षा, दलदल
iii) ज्वार, तिलहन iv) तालाब सिंचाई

इकाई 2 भारतीय इतिहास में क्षेत्र: गठन एवं विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण
  2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं
  2.2.2 मृत्कला प्रमाण
  2.2.3 साहित्यिक प्रमाण
2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता
  2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना
2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता
  2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव
  2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र
  2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना
2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन
  2.5.1 गांगेय थाला
  2.5.2 तमिल देश
  2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र
  2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा
  2.5.5 उत्तर-पश्चिम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे कि:

- भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए (भारतीय) भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी क्यों आवश्यक है,
- इन क्षेत्रों का उदय कैसे हुआ, तथा
- एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से किस रूप में भिन्न था।

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने देखा कि भारतीय उपमहाद्वीप कई क्षेत्रों से मिलकर बना है और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएं हैं देश के ऐतिहासिक उद्भव की प्रक्रिया में क्षेत्रों ने विशेष सांस्कृतिक विशिष्टताएं ग्रहण की तथा कई आधारों पर जैसे समान ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, सामाजिक संगठन, कलाएं आदि, हम एक क्षेत्र से दूसरे की भिन्नताओं को इंगित कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय इतिहास में समान सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीतियों एवं संस्थाओं तथा साथ ही क्षेत्रीय विशिष्टताओं की संरचना के स्थायित्व की दोहरी प्रक्रिया देखने को मिलती है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इतिहास में क्षेत्रों के उदय की प्रक्रिया का स्वरूप असमान रहा है। अत: वर्तमान की भांति भूत में भी विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में काफी असमानताएं रही हैं यद्यपि कोई भी क्षेत्र कभी भी पूरी तरह से कटा हुआ नहीं रहा है। इस इकाई में भारतीय इतिहास में क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। स्थान एवं काल के आधार पर भारतीय समाज के उद्भव के विभिन्न

चरणों में भिन्नता को समझने के लिए भारतीय उप महाद्वीप का गठन करने वाले क्षेत्रों के स्वरूप की जानकारी अत्यावश्यक है।

2.2 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण

क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय संस्कृतियों के बीच विभिन्नताओं के चिह्न संभवत: खाद्य उत्पादन के रूप में जीवन यापन के नए साधन की शुरुआत के साथ ढूंढे जा सकते हैं। उपमहाद्वीप की मुख्य नदियों के क्षेत्रों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की शुरुआत मात्र एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया थी जो कई सहस्त्राब्दियों में फैली हुई थी। कच्ची मैदान (जो कि अब पाकिस्तान में है) के अंतर्गत मेहर गढ़ में कृषिगत् गतिविधियां अपेक्षाकृत जल्दी लगभग 6000 ईसा पूर्व से पहले ही आरंभ हो गयीं थी तथा सिंधु घाटी में चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में, गंगा की घाटी में कोलडिहवा (उत्तर प्रदेश) में 5000 ईसा पूर्व में, चिरंद (बिहार) में तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध तथा अतरंजी खेडा (दोआब) में दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के पूर्वार्ध में कृषि की शुरुआत हुई तथापि गंगा घाटी में पूर्ण रूप में नियोजित कृषि, खेतीहर गांव तथा अन्य सम्बद्ध लक्षण जैसे नगर का उदय, व्यापार तथा राज्य प्रणाली आदि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के मध्य में ही दिखायी देते हैं। मध्य एवं प्रायद्वीपीय भारत में ऐसे कई स्थान थे जहां बदलाव की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दि में ही आरंभ हो सकी। इसी प्रकार गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के क्षेत्रों में कृषक समुदाय तेज़ी से फैलता रहा और सभ्यता के चरणों की विभिन्न प्रक्रियाओं को तेज़ी से तय करता रहा। जबकि असम, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा तथा मध्य भारत के काफी क्षेत्र जो कि बाकी क्षेत्रों से अपेक्षाकृत अथवा पूर्णतया कटे हुए थे। काफी लम्बे समय तक इन विकासों से अछूते रहे तथा आदिम अर्थव्यवस्था के चरण से आगे नहीं बढ़ पाए थे। अंतत: जब कुछ अपेक्षाकृत कटे हुए क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया का ऐतिहासिक दौर शुरू हुआ तो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इन विकासों के बीच न केवल समय का लंबा अंतराल था बल्कि क्षेत्रों के गठन के स्वरूप में भी स्पष्ट अन्तर था। पूर्व विकसित क्षेत्रों के मुख्य केन्द्रों का सांस्कृतिक प्रभाव इन कटे हुए क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया पर आरंभ से ही पड़ा। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विकसित हुए तथा अभी भी कुछ क्षेत्र हैं जो अन्य की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं।

2.2.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएं

जैसा कि हमने इकाई 1 में देखा, अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा। क्षेत्रों के असमान्य विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दकनी क्षेत्रों में नवपाषाण युगीन पशु पालक काफी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों के इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलत: विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखायी देती है। दूसरे शब्दों में, जहां एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व में बसने लगे थे वही दूसरी ओर दकन, आंध्र, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप में लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है।

लोहे के प्रादुर्भाव के साथ ही स्थायी कृषिगत् गतिविधि पर आधारित भौतिक संस्कृति का प्रसार आरंभ हुआ। तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के आरंभ से गांगेय उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति में काफी कुछ समानता दिखायी देती है। यद्यपि अशोक के शिला लेखों के भौगोलिक वितरण (जो कि उत्तर से दक्षिण तक मिलते हैं) के कारण पूरे उपमहाद्वीप में कुछ हद तक सांस्कृतिक समानता स्वीकार की जाती है, विंध्याचल के दक्षिण के क्षेत्रों में जटिल सामाजिक संरचना वाले आरंभिक ऐतिहासिक, साक्षर युग के उदय की प्रक्रिया मौर्य युग में तथा उसके उपरांत तेज़ हुई।

वास्तव में उत्तर मौर्य युग, 200-ईसा पूर्व 300-ईसवी दक्षिण भारत तथा दक्कन के अधिकतर क्षेत्रों की संस्कृति के विकास का आरंभिक चरण था। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक बस्तियों की खुदाई से प्राप्त पुरातात्विक आंकड़ों से इस तर्क को बल मिलता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि बीच के काफी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियां कभी भी पूरी तरह नहीं बसीं और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सभ्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुंची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफी असमान रहा।

2.2.2 मृत्कला प्रमाण

अपने अनश्वर गुण के कारण मृत्भाण्ड किसी संस्कृति की पहचान का विश्वस्नीय चिह्न, होते हैं तथा पुरातत्वात्मक श्रेणीबद्धता का महत्वपूर्ण साधन होते हैं। विभिन्न संस्कृतियां अपने विशिष्ट मृत्भाण्ड के आधार पर पहचानी जाती हैं। गेरू चित्रित मृत्भाण्ड जो कि 1000 ईसा पूर्व से पहले के हैं, चित्रित भूरे मृत्भाण्ड जो 800–400 ईसा पूर्व के बीच के हैं, काले एवं लाल मृत्भाण्ड जो उपरोक्त दोनों के बीच के काल के हैं, तथा उत्तरी काले पालिश वाले मृत्भाण्ड जो कि 500–100 ईसा पूर्व के हैं। मृत्भाण्ड की प्रथम तीन श्रेणियां मुख्यत: भारत-गांगेय विभाजन तथा दोआब सहित ऊपरी गंगा घाटी में मिलते हैं। काली पालिश वाले मृत्भाण्ड उत्तरी मैदान से आरंभ होकर मौर्य काल के दौरान मध्य भारत तथा दक्कन तक फैल गए।

विभिन्न प्रकार के मृत्भाण्डों के वितरण से हमें संस्कृतियों की सीमाओं तथा उनके विस्तार के चरण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है: भारत-गांगेय विभाजन तथा ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक नई संस्कृति का उदय सर्वप्रथम दूसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में हुआ जो कि धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली जो मौर्य काल में संभवत: मुख्य गांगेय क्षेत्र से भी आगे बढ़ गई।

2.2.3 साहित्यिक प्रमाण

प्राचीन भारतीय साहित्य से हमें संस्कृति स्वरूप के भौगोलिक प्रसार के प्रमाण भी मिलते हैं। ऋग वैदिक काल का भौगोलिक केन्द्र बिंदु सप्तसिंधु (सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों की भूमि) तथा भारत-गांगेय विभाजन था। उत्तर वैदिक काल में दोआब ने यह स्थान ले लिया तथा बुद्ध के युग में मध्य गांगेय घाटी (कौशल एवं मगध) को यह गौरव प्राप्त रहा यहां यह कह देना उपयुक्त होगा कि भौतिक संस्कृति के विकास के साथ ही भौगोलिक विस्तार के चरणों का विकास होता रहा। राज्य सीमा के अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में आरंभ हुआ और इसी काल में कुरू और पांचाल जैसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजवंशों एवं राज्यों का उदय हुआ। बुद्ध के युग में (छठवीं शती ईसा पूर्व) सोलह महाजनपदों (बड़े क्षेत्रीय राज्य) का उदय हुआ। यहां रुचिकर तथ्य यह है कि उत्तर पश्चिम में गांधार, मालवा में अवंती तथा दक्कन में अस्माक को छोड़कर अधिकतर **महाजनपद** ऊपरी एवं मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। कलिंग (प्राचीन तटवर्ती उड़ीसा) आंध्र, वंग (प्राचीन बंगाल) राजस्थान एवं गुजरात जैसे क्षेत्रों को इस युग पर प्रकाश डालने वाले साहित्य में स्थान नहीं मिला जिसका अर्थ यह है कि इन राज्यों का तब तक ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

विंध्याचल के दक्षिण के राज्यों, जैसे कलिंग, का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि ने पांचवीं शती ईसा पूर्व में किया सुदूर दक्षिण में तमिल भू-भाग का ऐतिहासिक काल में प्रवेश तक नहीं हुआ था। अत: विभिन्न क्षेत्रों का उदय और गठन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। अत: आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों की तकनीकी एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का यह अन्तर बाद में पनपने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के मूल में रहा।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में से कौन सा सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है ?

i) क्षेत्रों के असमान विकास की व्याख्या ऐतिहासिक पारिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती। ( )

ii) पूर्व विकसित क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकासों ने पृथक क्षेत्रों पर प्रभाव छोड़ा। ( )

iii) क्षेत्रों के अभ्युदय की प्रक्रिया हर स्थान पर समान रूपी थी। ( )

iv) विभिन्न संस्कृतियों की पहचान उनके विशिष्ट मृत्भाण्ड से होती है। ( )

v) क्षेत्रों की पहचान करने में साहित्य का कोई उपयोग नहीं है। ( )

2 लगभग पाँच पंक्तियों में विभिन्न मृत्भाण्ड कलाएँ और उनसे संबद्ध कालों का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.3 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता

सभी क्षेत्रों में गांव ही बुनियादी सामाजिक संगठन के इकाई रहे हैं और अपने निवासियों तथा शहरी जनता के जीवन यापन तथा राज्य की शक्ति का आधार रहे हैं इनमें से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण बस्तियाँ एवं नागरिक केन्द्र अपेक्षाकृत अधिक थे तथा शक्तिशाली विस्तारवादी राज्यों का इन क्षेत्रों में उदय हुआ। इन क्षेत्रों में नव पाषाण युग-ताम्र पाषाण युग से लगातार आबादियाँ तथा बस्तियां होने का प्रमाण मिलता है। यह विशेषता अन्य क्षेत्रों में दिखायी नहीं देती। क्षेत्रों के बीच के अन्तर की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है:

- भूगोल,
- भौतिक संस्कृति के प्रसार का तरीका एवं काल, तथा
- ऐतिहासिक शक्तियों का विन्यास जैसे जनसंख्या, तकनीकी, सामाजिक संगठन, सिंचाई आदि इन तमाम कारणों का संयोग क्षेत्रों की अलग पहचान बनाने में सहायक हुआ।

क्षेत्रों के पृथक एवं मजबूत व्यक्तित्व तथा क्षेत्रीय शक्तियों की असमानता के कारण भारतीय उपमहाद्वीप राजनैतिक एकता प्राप्त न कर सका। कुछ लोगों ने अपनी आंतरिक शक्ति के कारण अखिल भारतीय, अथवा कई क्षेत्रों की सबसे बड़ी शक्ति बनने के उद्देश्य से राज्य विस्तार का प्रयास किया किंतु इन प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौर्य, तुगलक, मुगल तथा ब्रिटिश साम्राज्यों को राजनैतिक एकीकरण में आंशिक सफलता मिली फिर भी इनमें से कोई भी सभी भौगोलिक इकाइयों और संस्कृतियों में राजनैतिक एकता नहीं ला सका, यद्यपि ब्रिटिश बहुत हद तक इसमें सफल रहे थे। मध्य भारत, या मोटे तौर पर मध्यवर्ती क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीप का दूरवर्ती सदैव ही मजबूत विस्तार वादी अखिल भारतीय शक्ति के दायरे से बाहर रहा। जैसा कि इकाई 1 में संकेत दिया गया था, विंध्याचल उत्तरी भारत तथा दक्षिण प्रायद्वीप के इतिहासों को पृथक करने में बहुत कुछ सफल रहा। इसी प्रकार अरावली पहाड़ियाँ कैम्बे खाड़ी के मुख से शुरू होकर दिल्ली तक एक सीमान्ती रेखा तैयार करती हैं। वास्तव में यह बहुत प्रभावी सीमा रही है। तथापि सिन्धु का निचला थाला और गुजरात काफी लम्बे समय तक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र बने रहे। इस प्रकार जहाँ एक ओर बड़े पैमाने पर केन्द्रीयकृत राज्य लम्बे समय तक बने न रह सके वहीं दूसरी ओर मगध, कौशल अवन्ती आंध्र, कलिंग, महाराष्ट्र, चेर, पाण्डय, चोल आदि जैसे प्राचीन राज्य किसी न किसी वंश के अंतर्गत बने रहे। उनके इस दीर्घकालीन स्थायित्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस प्राकृतिक क्षेत्र में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बने रहे।

2.3.1 चक्रवर्ती संकल्पना

चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) की संकल्पना जो कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों का आदर्श थी इस विषय पर प्रकाश डालती है। आदर्श चक्रवर्ती के लिए विश्व विजेता होना तथा सम्पूर्ण

विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार हिमालय से समुद्र तट का क्षेत्र चक्रवर्ती सम्राट का क्षेत्र था। रुचिकर तथ्य यह है कि उक्त क्षेत्र उतना ही है जितना भारतीय उपमहाद्वीप है। बाद की कई कृतियों में इस आदर्श को बार-बार दोहराया गया है। जो राजा विश्व-सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसे अश्वमेघ यज्ञ करना होता था। प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों में चक्रवर्ती की संकल्पना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस प्रकार राजा की परिकल्पना सदैव विश्व प्रभुत्व से संबद्ध थी। लेकिन न तो कौटिल्य और न ही उसके उत्तराधिकारी इस बात की व्याख्या करते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य का प्रशासन किस रूप में होना चाहिए। संभावना इस बात की है कि चक्रवर्ती आदर्श का अर्थ विरोधियों को वशीकृत करना, उनकी सीमाओं में अपने अधिकारों का विस्तार करना और इस प्रकार साम्राज्य को विस्तृत बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वशीकृत राज्य हमेशा के लिए एक ही प्रशासन प्रणाली का अंग बन जाते थे अथवा उन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था। दूसरे शब्दों में, चक्रवर्ती का अर्थ श्रेष्ठ राजनैतिक शक्ति प्रदर्शन था और प्रशासन प्रबन्ध और संगठन जैसे पक्षों से इसका कोई मतलब नहीं था।

उक्त आदर्श की इस प्रकार की सीमाओं के बावजूद महत्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक क्षेत्रों की मज़बूती और शक्तिशाली क्षेत्रवाद ने इस संकल्पना को साकार नहीं होने दिया। भारतीय उपमहाद्वीप को राजनैतिक रूप में एकीकृत करने के प्रयास यद्यपि अधिक सफल नहीं हुए लेकिन यह इच्छा लगातार बनी रही। इस तथ्य के बारे में हमें पूर्व ऐतिहासिक युग के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि छोटे-मोटे शासक भी अश्वमेघ यज्ञ किया करते थे जिससे कि वे अपनी शक्ति और संप्रभुता तथा राज्य के प्रति अपने लम्बे चौड़े दावों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। वास्तव में यह एक स्पष्ट उदाहरण है जो कि वास्तविकता और आदर्श के अन्तर पर प्रकाश डालता है और हमारे पूरे इतिहास में पृथक प्राकृतिक क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर विद्यमान होने की ओर संकेत करता है।

2.4 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता

"देश" शब्द की भांति "क्षेत्र" शब्द भी काफी विस्तृत अर्थ रखता है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। भूगोलशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान की आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रों को भिन्न रूपों में रेखांकित किया है। फलत: क्षेत्रों के वर्गीकरण में "भाषायी क्षेत्र", "जातीय क्षेत्र", "भौतिक क्षेत्र", "प्राकृतिक क्षेत्र", "सांस्कृतिक क्षेत्र" आदि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि ये क्षेत्रीय सीमाएँ लगभग समान प्रतीत होती हैं तथापि आवश्यक रूप से हमेशा ऐसा नहीं होता। भौतिक एवं प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाएं अभिसरित प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषायी, जातीय, पारिवारिक बंधुत्व संगठन तथा ऐतिहासिक परंपराओं के साथ स्वतंत्र संस्कृति क्षेत्र थे। तथापि आवश्यक नहीं है कि दो पड़ोसी क्षेत्र समरूप हों। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, भौगोलिक रूप से निकटवर्ती क्षेत्रों में भी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान विपरीत सांस्कृतिक रुझान मौजूद थे। देश के ऐतिहासिक विकास के प्रतिरूप तथा ऐतिहासिक चरण की ओर संक्रमण में क्षेत्रीय असमानता क्षेत्रों के बीच श्रेणीबद्धता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है। इस श्रेणीबद्धता की समझ के आधार पर क्षेत्रों की अंतरीय विशिष्टता तथा उनके विभिन्न कालों में गठन को समझा जा सकता है।

2.4.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव

"भारतीय ऐतिहासिक भूगोल की बुनियादी संरचना रेखा" अथवा भारतीय इतिहास को मुख्य भौगोलिक विशिष्टताओं जैसे नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा अथवा कैम्बे की खाड़ी से मथुरा तक जाने वाली रेखा, अरावली द्वारा संरचित रेखा आदि ने उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक प्रसार के प्रतिरूप को काफी प्रभावित किया, इनको निम्नलिखित रूप में चार बुनियादी भागों में विभाजित किया गया है:

- मध्य एवं पश्चिमी एशिया से प्रभाव ग्रहण करने वाले सिंधु के मैदान,
- गांगेय मैदान जो कि दिल्ली-मथुरा रेखा से आरंभ होते हैं तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं से आने वाले तमाम राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को समाहित कर चुके हैं,
- केन्द्रीय भारतीय मध्य क्षेत्र जिनके गुजरात तथा उड़ीसा दो छोर हैं, तथा

भारत
संरचनात्मक रेखाचित्र

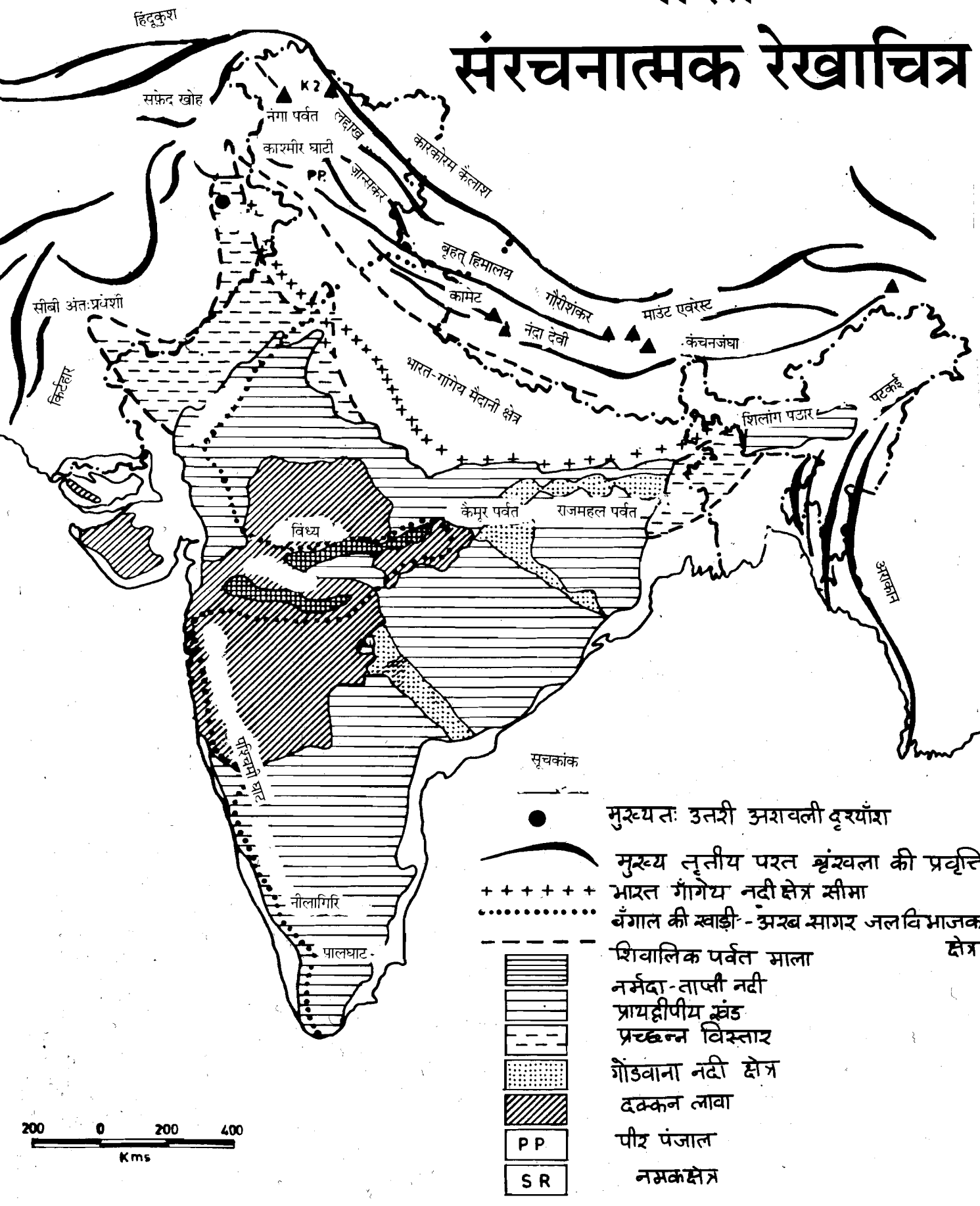

मानचित्र 5.

- प्रायद्वीपीय भारत जो नर्मदा का दक्षिणी भाग है।

अरावली रेखा के उत्तर एवं पश्चिम में सामान्यत: सांस्कृतिक स्थिति भिन्न प्रतीत होती है। आरंभिक ऐतिहासिक दौर में केवल राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्र गांगेय घाटी के सांस्कृतिक विकास की मुख्य धारा से प्रभावित नज़र आते हैं।

पंजाब के संदर्भ में अन्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। ऋग वैदिक काल के बाद पंजाब में विकास की दर धीमी थी। गुप्त काल तक इस क्षेत्र में गैर-राजतंत्रीय जनपदों का नियमित अस्तित्व स्वतंत्र विकास का द्योतक है। इससे क्षेत्र में अविकसित सम्पत्ति संबंध तथा असंतोष-जनक कृषि विकास की ओर भी संकेत मिलता है। पंजाब के मैदानों में भूमि अनुदान शिलालेखों की अनुपस्थिति, जो कि गुप्त काल तथा उत्तर गुप्त काल भारत में सामान्य बात थी, इस विश्वास को और भी बल प्रदान करती है। पंजाब के मैदानों में ब्राह्मणवाद ने कभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं और न ही वर्ण व्यवस्था को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया था। ब्राह्मणों ने यदा कदा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और क्षत्रिय वर्ण शीघ्र ही वर्ण व्यवस्था से लुप्त हो गया। खत्री जो कि स्वयं को क्षत्रिय बताते हैं अधिकतर वैश्यों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब गंगा घाटी के दृष्टिकोण से देर से हुए ऐतिहासिक परिवर्तन तथा क्षेत्रीय भिन्नता दोनों ही अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा बुनियादी विभाजन रेखा है क्योंकि गुजरात, महाराष्ट्र एवं उड़ीसा को छोड़कर इस रेखा के दक्षिण के सभी सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभिक काल में तमिल मैदानों से प्रभावित नज़र आते हैं। इन क्षेत्रों में भिन्न समुदाय-संगठन तथा जाति श्रेणियां मौजूद थी। महाराष्ट्र, जिसकी सीमा मालवा से मिलती है और चूंकि मालवा और दक्कन लावा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा मालवा गंगा घाटी तथा दक्कन के बीच महत्वपूर्ण सेतु है, अत: यहां विकास प्रक्रिया भिन्न थी। यहां यह उल्लेख अनुचित न होगा कि दक्षिण की ओर जनसंख्या का आवागमन तथा सीमा विस्तार इसी रास्ते से हुआ।

2.4.2 केन्द्रीय क्षेत्र

भारतीय इतिहास में काफी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के स्थायी केन्द्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे। भूगोलशास्त्री एवं इतिहासकार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित करते हैं: i) स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र ii) अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा iii) अलग-थलग क्षेत्र। स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियां अधिकतर संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्व को और भी बढ़ा दिया था। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्रों के रूप में उभरे। किंतु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भूगोल और संसाधन केवल संभावनाएं अथवा सीमाएं प्रस्तुत करते हैं। किसी का महत्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। वारंगल के काकातीय राज्य एवं गुजरात के चालुक्य राज्य ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं जोकि केन्द्रीय क्षेत्रों की परिधि से बाहर उदित हुए लेकिन ऐसे उदाहरण छिट-पुट ही हैं। मध्य भारत के अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे भीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की पहाड़ियां बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूंकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप में हुआ अत: तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

2.4.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में बस्तियों की संरचना

क्षेत्रों में बस्तियों की संरचना स्थिर नहीं रही। क्षेत्रों में गांव, खेड़े, नगर एवं शहर शामिल होते थे। मध्य गंगा में मैदानों एवं दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में नगरों की संख्या अधिक थी। जैसे हम गुप्त काल की ओर बढ़ते जाते हैं शहरी केन्द्रों की संख्या कम होती जाती है। कृषि के विस्तार तथा नयी ग्रामीण बस्तियों के प्रसार के निरंतर प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासियों के खेड़े खेतिहर गांव बन गए। आर्थिक गतिविधियों एवं सामाजिक वर्गीकरण के

स्तर पर ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण बस्तियों में अन्तर था। इस अन्तर का धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में भी प्रसार हो गया जो आरंभिक चरणों में विकास की मुख्य धारा से पूर्णतया जुड़े हुए नहीं थे। इन क्षेत्रों में आदिवासी संस्कृति से अधिक जटिल सामाजिक संरचना की दिशा में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में संगठित धर्म, राज्य एवं वर्ग समाज का आधार तैयार हुआ। इन परिवर्तनों का अर्थ इन क्षेत्रों में नई बस्तियों का विस्तार तथा जनसंख्या में वृद्धि था। भारतीय इतिहास में सदैव जनसंख्या में अधिक घनत्व वाले क्षेत्र अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। गंगा घाटी, तमिल मैदान एवं पूर्वी तट सभी ऐसे क्षेत्र थे जहां जनसंख्या का घनत्व अधिक था। संसाधन युक्त तथा अन्य सुविधाओं वाले क्षेत्र स्वाभाविक रूप से अधिक घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र थे तथा निरंतर मानवीय संसाधनों का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना राज्य की सैन्य शक्ति को बल प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 2

1 भारतीय उपमहाद्वीप के राजनैतिक एकीकरण को बाधित करने वाले कारणों की चर्चा दस पंक्तियों में करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 चक्रवर्ती संकल्पना से आप क्या समझते हैं ? पाँच पंक्तियों में लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) प्राकृतिक क्षेत्र . . . (स्वतंत्र /आश्रित) सांस्कृति क्षेत्र होते हैं।

ii) इतिहास में भिन्न संस्कृतियां . . . (नहीं थी /सहअस्तित्व) में विद्यमान थी।

iii) पंजाब में सांस्कृतिक विकास गांगेय घाटी से . . . (भिन्न /मिलता जुलता) था।

iv) भारतीय . . . (अंतरिक्ष विज्ञान / इतिहास) में . . . (अधिक /कम) घनत्व वाले क्षेत्रों की अग्रणी भूमिका रही है।

2.5 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन

गंगा-यमुना दोआब, मध्य गंगा घाटी, मालवा, उत्तरी दक्कन, आंध्र, कलिंग (तटवर्ती उड़ीसा) एवं तमिल मैदान ऐसे मुख्य स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र हैं जो शक्ति केन्द्र के रूप में काफी पहले उभर चुके थे। लेकिन कुछ ऐसे छोटे क्षेत्र भी हैं (जिन्हें उप-क्षेत्र कहा जा सकता है) जिन्होंने अपनी पहचान बनाए रखी। कोकान, कन्नाडा और छत्तीसगढ़ इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ क्षेत्र जैसे कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच वेंगी, ऐसे क्षेत्र थे जिनके कृषि संसाधनों की प्रचुरता के कारण इन पर प्रभुता स्थापित करने के लिए निरंतर युद्ध हुए। इन क्षेत्रों पर प्रभुता स्थापित होने से

आसपास के क्षेत्र शक्तिशाली बन सकते थे। मुख्य केन्द्रीय क्षेत्र नदी की मिट्टी वाली उपजाऊ भूमि की विस्तृत उपलब्धता के कारण मुख्य कृषि क्षेत्र भी रहे हैं। अब कुछ उदाहरणों के आधार पर क्षेत्रों के गठन के प्रतिरूपों एवं कारणों पर दृष्टिपात करेंगे।

2.5.1 गांगेय थाला

अधिक उच्च कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण गंगा के मैदान भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभुत्वशाली रहे हैं। इसके समरूप किसी भी अन्य क्षेत्र का शक्ति आधार नहीं रहा है। किन्तु यह पूरा मैदान जैसा कि इकाई 1 में उल्लेख किया गया है, एक समरूपी भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। हम पढ़ चुके हैं कि मध्य गंगा के मैदान कई कारणों से ऊपरी एवं निचले गंगा के मैदानों की अपेक्षा अधिक सफल क्षेत्र रहा और मौर्य काल तक आते-आते इस क्षेत्र ने पूरे उपमहाद्वीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऋग वैदिक काल के दौरान भारत गांगेय विभाजन इसका केन्द्र था। उत्तर वैदिक काल में 2000 ईसा पूर्व के आसपास भौगोलिक केन्द्र गंगा-जमुना दोआब बन गया। इसके साथ ही वैदिक कालीन बस्तियाँ पूर्व की ओर फैलने लगीं। लेकिन इसके अधिक महत्वपूर्ण विकास का दौर बैलों वाले हल के प्रयोग द्वारा स्थायी खेतिहर जीवन के आरंभ से होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सीमाएं एवं राष्ट्र एवं जनपदों का उदय हुआ। कुरू और पांचाल इसके अच्छे उदाहरण हैं। छटी शती ईसा पूर्व से जनपदों के उदय की प्रक्रिया तेज हो गयी थी। इसी समय सर्वप्रथम महाजनपदों का उदय होता है जिसमें छोटे जनपद समाहित हो जाते हैं। समकालीन साहित्य में महाजनपदों की संख्या सोलह बतायी गयी है।

रहने योग्य स्थान बनाने के लिए घने जंगलों को आग लगाकर अथवा धातु के औजारों से साफ किया गया। धान की उपज वाली मध्य गंगा घाटी में लोहे के हल, द्वारा गहरी जुताई के कारण अन्न का उत्पादन बढ़ गया। बढ़ती हुई जनसंख्या ने अधिक उपज की आवश्यकता को जन्म दिया। विशेषकर इस अधिक जनसंख्या वाले समाज का एक वर्ग जिसमें शासक, अधिकारी, पुरोहित, सन्यासी आदि शामिल थे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं लेते थे। स्थानीय उपभोगी आवश्यकता से अधिक इस कृषि उत्पादन से नगरों के उदय एवं विकास को बढ़ावा मिला। इस काल के मिट्टी के बर्तन उत्तरी काली पालिश वाले (Northern Black Polish Ware) बर्तन हैं जो 500 ईसा पूर्व के लगभग के हैं। इसी समय सर्वप्रथम सिक्कों का चलन आरंभ होता प्रतीत होता है। बढ़ते हुए व्यापार एवं वाणिज्य के कारण सिक्कों की आवश्यकता महसूस की गयी। उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों का कौशल एवं मगध से उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला, पश्चिमी मालवा में उज्जैन तथा तटवर्ती आंध्र में उमरावती जैसे सुदूर नगरों तक फैल जाना संगठित वाणिज्य एवं संचार का द्योतक है जिसने इन सुदूर नगरों के बीच संबंध जोड़ दिया। इस विकास के साथ ही भारी सामाजिक परिवर्तन हुए। बस्तियों में स्थायी जीवन के जड़ पकड़ने के कारण वन विचरण तथा आदिवासी जीवन पद्धति धीरे-धीरे कम होने लगी। उत्तर वैदिक काल की जनता मूल निवासियों के काफी नजदीकी सम्पर्क में आयी। उत्तर वैदिक साहित्य में इस संपर्क तथा आपसी मेल-जोल के प्रमाण मिलते हैं। इन विकासों की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम कुछ हद तक श्रम विभाजन और तदोपरांत व्यवसायों के विस्तार एवं उनमें विशिष्ट दक्षता प्राप्त करने की नयी परिस्थिति ने चार वर्णों की जाति व्यवस्था के लिए उपयुक्त माहौल तैयार कर दिया।

जनपदों एवं महाजनपदों के अभ्युदय (विस्तृत जानकारी के लिए खंड 4 देखें) के साथ ही काफी बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन प्रकट हुए। प्रत्येक जनपद में आम तौर पर ग्राम, निगम (बड़ी बस्तियाँ जहां व्यापार विनिमय होता था) एवं नगर हुआ करते थे। जंगल (वन) भी जनपदों का एक हिस्सा होते थे। जनपद मूलत: सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे। इन्होंने राज्य के गठन का आधार तैयार किया, जिसे 6वीं शती ईसा पूर्व में मूर्तरूप प्राप्त हुआ। महाजनपदों के उदय के साथ महानगरों और तदानुरूप धनी एवं निर्धन सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। यह पूरी प्रक्रिया मध्य गंगाघाटी में अपने चर्मोत्कर्ष पर मौर्य काल में पहुंची। इस प्रकार समाज में सत्ता का जन्म हुआ। सत्ताधारी वर्ग शक्तिशाली धार्मिक व्यवस्थाओं जैसे ब्राह्मणवाद, बुद्धमत, जैनमत, आदि का प्रयोग करके नयी सामाजिक व्यवस्था तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रहा था। इन विकासों की पृष्ठभूमि में उत्तरी गांगेय भारत पूरी तरह इतिहास का पात्र बन जाता है।

2.5.2 तमिल देश

तमिल कविताओं के संग्रह से, जिन्हें उनके समग्र रूप में संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है, प्राचीन तमिल देश (तमिलाकम्) में पूर्व आदिवासी वन-विचरण चरण से मिलता है इन कविताओं से हमें एक ही समय में भिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों के अस्तित्व तथा भिन्न किन्तु अंत:संबंधित जीवन शैली जैसे मोज्य पदार्थ एकत्रण, प्रारंभिक कृषि, मछली पकड़ना,पशुपालन से लेकर बड़े पैमाने पर खेती के सहअस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। कावेरी, पेरियार एवं पैगाई की उपजाऊ नदी घाटियों (मारूटम क्षेत्र) में कृषि उत्पादन भारी मात्रा में होता था तथा यही वे क्षेत्र थे जो कि तीन प्राचीन अग्रणी वंशों, चोल, चेर, एवं पांड्य के प्रभाव क्षेत्र थे। यद्यपि ईसा पूर्व शताब्दियों में लड़ाकू सरदारों, पशु प्राप्ति के लिए आक्रमण, युद्ध एवं लूट आदि का प्रभुत्व था लेकिन धीरे-धीरे लोग किसानों के रूप में बस्तियों में वास करने लगे और एक श्रेणीबद्ध समाज का उदय हुआ जिसमें कृषक, भाट, योद्धा एवं कवायली सरदार मुख्य श्रेणियाँ थीं। युद्ध के रिवाज ने योद्धा वर्ग को अपने मुखिया के आधीन प्रभुत्वमान बना दिया। छापों से बचाव एवं छुटकारा पाने की दृष्टि से किसान वर्ग एक ऐसी व्यवस्था में समाहित होने के लिए तैयार था जिसमें अविकसित राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। राज्य के गठन की प्रक्रिया तेज़ होने के निम्नलिखित कारण थे:

- आरंभिक ईसवी शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार,
- नगरों का उदय, तथा
- ब्राह्मणों के साथ उत्तरी सभ्यता (आर्य) की संस्कृति का आगमन।

ईसवी युग की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार का महत्व बढ़ रहा था। साथ ही तमिलाकम् में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आंतरिक तथा तमिलाकम् एवं दक्कन के बीच व्यापार को काफी महत्व प्राप्त हो चुका था। इस आरंभिक काल में केरल तमिलाकम् का अभिन्न हिस्सा था। पहाड़ियों एवं सीमांती कृषि वाले क्षेत्रों के छोटे-छोटे असंख्य कबीले तीन राज्यों की परिधि में लाए गए। सामाजिक रूप से यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था के गठन में परिलक्षित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान शूद्र के स्तर पर पहुंचा दिए गए। इस प्रकार आरंभिक तमिलनाडु में राज्य के उदय का आधार तैयार किया जा चुका था।

2.5.3 दक्कन: आंध्र एवं महाराष्ट्र

आंध्र एवं उत्तरी दक्कन में लोहे का इस्तेमाल करने वाले उत्तर-पाषाण युगीन समुदायों ने, जोकि नवपाषाण युगीन तथा मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों का अनुसरण कर रहे थे स्थायी कृषि के लिए आधार तैयार किया और इन क्षेत्रों के परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया। पांचवीं से तीसरी शती ईसा के पूर्व के बीच आंध्र में समुद्र तटवर्ती भूमि पर अधिक उपज वाली धान की फसलें उगाना जारी रहा। उत्तर पाषाणकालीन शवाधानो दफनाने की परम्परा से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

- शिल्पकला में अल्पविकसित विशेषज्ञता,
- अविकसित विनिमय व्यवस्था जिसके अंतर्गत खनिज संसाधन उत्तर दक्कन भेजे जाते थे, तथा
- स्तर का अंतर।

यहां काले एवं लाल बर्तनों के स्थल प्रचूर मात्रा में मिले जिनका अर्थ है कि यहां संभवत: जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। तीसरी शती ईसा पूर्व से उत्तर पाषाणकाल में परिवर्तन विस्तृत रूप में समता आधारित समाज में परिवर्तन की शुरुआत थी, फलत: वर्गीकृत समाज की नीव पड़ी। दूसरी शती ईसा पूर्व के आरंभ से धातु के सिक्के का चलन रोम से व्यापार तथा शहरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। शिलालेखों तथा पुरातत्वशास्त्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर आंध्र और महाराष्ट्र में काफी संख्या में नगरों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस समय तक बुद्धमत दक्कन में फैल चुका था और बौद्ध केन्द्र एवं मठ स्थापित हो चुके थे। साथ ही मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक विस्तार के रूप में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसने इन विकासों की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

मौर्य प्रसार के साथ उत्तर पाषाण युगीन संस्कृति ने आरंभिक ऐतिहासिक बस्तियों का पथ प्रशस्त किया दक्कन में कई शहरी केन्द्र एवं मठ जिनमें से कई केन्द्रीय स्थल बन गए इसी काल में अस्तित्व में आए। यही अंतर्संबंध दक्कन में स्थानीय बस्तियों के उदय में सहायक रहे। यह स्थानीय बस्तियाँ उत्तरी भारतीय जनपदों के समरूप समझी जा सकती हैं। सतवाहनों

के युग तक स्थानीय बस्तियों ने दक्कन में पूर्व ऐतिहासिक राज्य गठन का आधार तैयार किया। दूसरी शती ईसा पूर्व के बाद से धीरे-धीरे खेतिहर बस्तियों के विस्तार एवं नए समुदायों के समाहित होने की प्रक्रिया दिखायी देती है। सामाजिक मेल-जोल का पथ सर्वप्रथम बुद्धमत एवं मठों ने तदोपरांत ब्राह्मणों एवं ब्राह्मणवाद ने प्रशस्त किया। निवासी समुदायों के बीच त्रिकोणी संबंध प्रतीत होता है। यह तीन पक्ष निवासी समुदाय, राज्य, मठ अथवा /एवं ब्राह्मण थे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया तटवर्ती आंध्र में इक्ष्वाकुवश, कर्नाटक में कदम्ब तथा महाराष्ट्र में वकातका के अधीन और तेज हुई। प्रथम सहस्त्राब्दि ईसवी के मध्य तक उक्त दो क्षेत्र अपनी अलग पहचान बना चुके थे।

2.5.4 कलिंग एवं प्राचीन उड़ीसा

दक्कन की भांति ही उड़ीसा में भी तीसरी एवं चौथी शती ईसा पूर्व के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 300 ईसा पूर्व तथा चौथी शताब्दी ईसवी के बीच उड़ीसा का इतिहास आदिवासी समाज के आंतरिक परिवर्तन का इतिहास है। यह परिवर्तन आंशिक रूप से स्वतंत्र था तथा कुछ अंश तक गंगा के मैदानों की सुसंस्कृत सभ्यता से प्रभावित था जिसका आरंभ नंद एवं मौर्य काल के समय से इंगित किया जा सकता है। इसके उपरांत चौथी शताब्दी ईसवी से नवीं शताब्दी के बीच इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर कई उप क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। दसवीं शताब्दी तक यह विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी। तथापि यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर समरूपी नहीं थी।

डेल्टा तट के तटवर्ती क्षेत्रों में क्षेत्र के अंदर की जंगली भूमि और ढलानों की अपेक्षा, जो कि निकटवर्ती छत्तीसगढ़ एवं बस्तर उपक्षेत्रों से काफी मिलते-जुलते हैं, ऐतिहासिक चरण की दिशा में परिवर्तन जल्दी हुए। केन्द्रीय एवं पश्चिमी उड़ीसा में धीमा और असमान परिवर्तन देखने को मिलता है। बड़ी संख्या में यहां आदिवासियों का बसना तथा भू-आवृति के कारण यहां गंगा प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्रक्रिया की पुनरावृत्ति नहीं हो सकी, उड़ीसा में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिगत समाज देर से उभरा और जब उभरा भी तो काफी मूल अंतरों के साथ उभरा। सामाजिक संरचना की दृष्टि से उड़ीसा क्षेत्रीय भिन्नता का अच्छा उदाहरण है।

2.5.5 उत्तर-पश्चिम

उत्तर-पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान के विषय में अभी बहुत कम चर्चा हुई है। इसका कारण इन क्षेत्रों की सीमांती स्थिति है। यह क्षेत्र आरंभिक ऐतिहासिक दौर में अधिकतर विशाल भारतीय रेगिस्तान में हो रहे सांस्कृतिक विकासों की मुख्य धारा से कटे रहे। इस तथ्य पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से विकासरहित था। जिस काल की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में इन क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं वह अधिकतर मध्य ऐशिया, अफगानिस्तान अथवा ईरान के संदर्भ से हुई हैं केवल कुशान काल के बाद से ही इन क्षेत्रों में एक अंतर्क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें उत्तरी भारत का भी एक बड़ा भाग शामिल था। उत्तर-पश्चिम में गांधार क्षेत्र इसका अपवाद था। छठवीं शताब्दि ईसा पूर्व में ही गांधार 16 महा-जनपदों की सूची में था। मगध के राजा बिम्बसार का गांधार का राजा के साथ राजनैतिक संबंध था। गांधार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा एवं व्यापार का केन्द्र थी। गांधार का विस्तृत आर्थिक आधार था। मथुरा, मध्य भारत तथा रोम के साथ गांधार के व्यापार के प्रमाण हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण गांधार विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों के मिलाप का केन्द्रीय स्थान था। छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम 25 वर्षों में यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से ईरानी (आर्केमिनिड) साम्राज्य का हिस्सा था। 500 शताब्दी ईसा पूर्व से 500 शताब्दी ईसवी तक लगभग 1000 वर्षों तक तक्षशिला में निरंतर शहरी जीवन के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु यह शहरी जीवन अपने चर्मोत्कर्ष पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसवी तक रहा। इसी काल में सुविख्यात गांधार कला शैली विकसित हुई। भाव की दृष्टि से सामान्य यह कला यूनानी बौद्ध शैली के रूप में व्याख्यायित की जाती है क्योंकि यह गांधार-शैली — यूनानी कला तथा बुद्धमत के सामंजस्य का परिणाम मानी जाती है। लेकिन अब निरंतर यह स्वीकार केया जा रहा है कि इस शैली पर बैक्ट्रिया का प्रभाव भी था। अत: गांधार शैली के विकास

पर बैक्ट्रिया विचार पद्धति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता। यहां जो कहने का प्रयास किया जा रहा है वह निम्नलिखित है:

1) प्रथमत: उत्तर पश्चिम में सिंध एवं बलूचिस्तान की तुलना में गांधार एक भिन्न विकास प्रक्रिया दर्शाता है, तथा

2) आरंभिक ईसवी शताब्दियों में इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न बाह्य प्रभावों के आधार पर बनी।

बोध प्रश्न 3

1 निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन-सा गलत (×) है?

i) गांगेय थाला एक समरूपी भौगोलिक आधार है। ( )

ii) मुद्रा के चलन की आवश्यकता व्यापार एवं वाणिज्य के कारण प्रस्तुत हुई। ( )

iii) संगम साहित्य प्राचीन तमिल देश में राज्य के गठन पर कोई प्रकाश नहीं डालता है। ( )

iv) गांधार क्षेत्र का विकास भिन्न सांस्कृतिक प्रभावों से प्रेरित था। ( )

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

i) . . . (जनपदों / महाजनपदों) के उदय के कारण महानगरों का उदय संभव हो सका।

ii) आंध्र तटवर्ती क्षेत्रों में . . . (पांचवीं, तीसरी, प्रथम, दूसरी) शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान अधिक उत्पादक . . . (गेहूँ /धान) उगाना प्रचलित था।

iii) उड़ीसा में . . . (गैर आदिवासी /आदिवासी) परिस्थिति के कारण . . . (उपमहाद्वीप /क्षेत्र) में परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा पड़ी।

2.6 सारांश

हमारे इतिहास में क्षेत्र एवं क्षेत्रीयता की समस्या के सर्वेक्षण तथा क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रों का सामाजिक सांस्कृतिक अंतर ऐतिहासिक रूप से काफी पुराना अंतर है। स्वाभाविक भौतिक क्षेत्रों का ऐतिहासिक /सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उदय भारतीय इतिहास के आरंभिक दौर में भी देखा जा सकता है। बाद के दौर में इन क्षेत्रों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तैयार की और पृथक सामाजिक राजनैतिक इकाई के रूप में उभरे। कुछ क्षेत्र, ऐतिहासिक शक्तियों के उनमें आरंभ में ही अभिसरित हो जाने के कारण अपेक्षाकृत जल्दी और तेजी से उभरे। अन्य क्षेत्रों के अंतर्गत विकास इन बुनियादी केन्द्रों के साथ सांस्कृतिक संपर्क तथा इस संस्कृति को समाहित करने के साथ हुआ। कुछ हद तक इससे भिन्न क्षेत्रों की विशिष्टताओं और उनमें भिन्नताओं को समझा जा सकता है। क्षेत्रीय विभिन्नताएं गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में भाषा, शिल्पकला, वास्तुकला एवं जाति व्यवस्था के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में रेखांकित होती हैं। लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाएं इसी काल में विकसित होती हैं। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग जाति व्यवस्था भी विकसित हुई। यह सांस्कृतिक अंतर केवल भिन्न क्षेत्रों के बीच ही नहीं थे बल्कि एक ही क्षेत्र में भी भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि क्षेत्र अपने आप में साधारणतया समरूपी इकाई थे लेकिन क्षेत्रों के अंतर्गत उपक्षेत्रों के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमने पहले भी देखा है कि गांगेय उत्तरी भारत किसी भी रूप में एक समरूपी क्षेत्र नहीं था। प्राचीन तमिलाकम् (तमिलनाडु) के अंतर्गत पर्यावरणीय विभिन्नताएँ भी ध्यान में रखी जानी चाहिएं। आंध्र, उड़ीसा, पंजाब और गुजरात के संदर्भ में भी यह तथ्य उतना ही सही जान पड़ता है। उपक्षेत्रों के अपने प्राचीन नाम भी थे। तथापि बदलते हुए राजनैतिक प्रतिरूपों और उपक्षेत्रों के एक दूसरे में समाहित हो जाने के कारण यह उपक्षेत्र बाद के समय में नये नाम ग्रहण करने लगे। निश्चित सीमाओं में एक इकाई के रूप में क्षेत्र ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उभरते हैं, और भारतीय इतिहास की समझ के लिए क्षेत्रों की विशेषताओं और उनके गठन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

2.7 शब्दावली

साक्षर युग: इतिहास का वह काल जब समाज में साक्षरता और लिपि का ज्ञान था।

मृत्भाण्ड: मिट्टी के बर्तन।

संगम साहित्य: तमिल क्षेत्र के लोगों का सबसे पुराना साहित्य। यह पहली से तीसरी ईसवी के बीच संकलित किया गया।

भाट: वह घुमक्कड़ समूह जो गीतों के रूप में प्रशस्तियाँ गाते थे।

केन्द्रीय क्षेत्र: वह क्षेत्र जो किसी बड़े क्षेत्र के विकास में केन्द्रीय बिन्दु की भूमिका निभाते हैं।

निवासी समुदाय: कबायली समुदाय के विपरीत एक स्थान पर रहकर कृषि तथा अन्य तरीकों से जीवनयापन करने वाले लोग।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) × ii) ✓, iii) × iv) ✓, v) ×

2 **संकेत:** गेरू – चित्रित मृत्भाण्ड, चमकाए हुए चित्रित मृत्भाण्ड, उनके काल का भी उल्लेख करें। देखें उपभाग 2.2.2

बोध प्रश्न 2

1 आप के उत्तर में शक्तिशाली क्षेत्रीय इकाइयों के विकास, इकाइयों की शक्ति एवं क्षेत्रीय शक्तियों का मजबूत पक्ष आदि सम्मिलित होना चाहिए, देखें भाग 2.3

2 देखें उपभाग 2.3.1

3 i) स्वतंत्र, ii) सहअस्तित्व, iii) भिन्न, iv) उच्च, इतिहास

बोध प्रश्न 3

1 i) x, ii) ✓, iii) ✓ iv) x, v) ✓

2 i) विकास, ii) महाजनपद, iii) फसल, पांचवीं-तीसरी शताब्दी ई. पू., iv) आदिवासी क्षेत्र।

इकाई 3 शिकारी-संग्रहकर्त्ता: पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 पुरापाषाण युग
  3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार
  3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ
  3.2.3 जीवन यापन के तरीके
3.3 मध्य पाषाण युग
  3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार
  3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ
  3.3.3 जीवन यापन के तरीके
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रागैतिहासिक-काल की शिकारी-संग्रहकर्त्ता अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों को समझ सकेंगे,
- उन पुरातात्विक प्रमाणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिनसे इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है,
- इस काल के लोगों के जीवन यापन के तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- उन औजारों के बारे में जान सकेंगे जिनका वे उपयोग करते थे। इसके अलावा इस बात की भी जानकारी मिल सकेगी कि प्रागैतिहासिक कला उनके संगठन के विषय में जानने में कितना सहयोग प्रदान कर सकती है।

3.1 प्रस्तावना

आज बीसवीं शताब्दी में हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य जाति ने अपने अस्तित्व के आरम्भ से लेकर आज तक का 99% हिस्सा शिकारी/संग्रहकर्त्ता के रूप में बिताया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने मात्र 10,000 वर्ष पूर्व कृषि द्वारा उत्पादन करना सीखा। इससे पहले वह पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर था। अपने भोजन के लिए या तो वे प्रकृति से जड़ें, फल, मूल आदि एकत्र करते थे या पक्षियों, जानवरों और मछलियाँ पकड़कर अपना भोजन जुटाते थे। अपने अस्तित्व के अधिकांश कालों में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण पर पूर्णत: आश्रित रहा। इस तथ्य से कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि उनके भोजन प्राप्त करने के तरीकों का प्रभाव उनके प्रकृति से संबंध और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण पर पड़ा। दूसरी यह कि शिकारी /संग्रहकर्त्ता एक समूह में रहते थे और इसका संबंध उनके द्वारा भोजन जुटाने की पद्धति से है। यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्य समूहों की अपेक्षा शिकारी /संग्रहकर्त्ता समूहों की बनावट कही ज्यादा लचीली थी।

मनुष्य काफी अरसे तक शिकारी /संग्रहकर्त्ता का जीवन बिताता रहा। इसलिए इस काल के मानव इतिहास को जानना जरूरी है। विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां आज भी लोग शिकारी /संग्रहकर्त्ता का जीवन जी रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि मानव इतिहास में हुए सांस्कृतिक बदलावों के साथ-साथ हम उनकी संस्कृति के बारे में भी जानकारी हासिल करें। पर हम शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं के बारे में जानेंगे कैसे ? शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के रहने के ढंग, उनके सामाजिक संगठन और उनके पर्यावरण आदि विभिन्न पहलुओं पर कई मानव जाति

वैज्ञानिकों /मानवेताओं ने प्रकाश डाला है। इन्होंने जीवित शिकारी /संग्रहकर्त्ता समूहों का अध्ययन किया है। इनके कार्यों से अतीत के शिकारी /संग्रहकर्त्ता समुदायों की जीवन पद्धति और स्थिति को जानने की अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इन समुदायों के बारे में जानने के लिए हमें उन पुरातत्ववेताओं और अन्य वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है, जो उन समुदाय विशेष के औजारों, हड्डियों के अवशेषों और पर्यावरण विशेष के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के लिए कई प्रकार के शैक्षणिक संकायों का सहारा लेना पड़ता है। उनके जीवन को जानने के लिए कई प्रकार के साक्ष्यों जैसे जानवरों के अवशेष, पौधे और अन्य जैव अवशेषों का अध्ययन करना पड़ता है और उनका संबंध शिकारी /संग्रहकर्त्ता अवस्था से जोड़ना पड़ता है और इनसे आदि मानव के तत्कालीन भौतिक पर्यावरण को जानने और इसके उपयोग को समझने की अंतर्दृष्टि मिलती है।

शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा उपयोग में लाए गए पत्थर के औजार पाए गए हैं। इन औजारों को इनके प्रकार तथा काल के अनुसार मध्यपाषाणीय, पुरापाषाणीय आदि वर्गों में विभाजित किया गया है। इन औजारों के बनाने की तकनीक पर भी पुरातत्ववेत्ता विचार करते हैं। पशुओं के अवशेषों के अध्ययन से इस बात की जानकारी मिलती है कि प्रागैतिहासिक काल में उनका किस प्रकार उपयोग किया जाता था। पत्थर पर की गयी खुदाई और चित्रकारी से भी प्रागैतिहासिक काल के लोगों की अर्थव्यवस्था और समाज का पता चलता है।

3.2 पुरापाषाण युग

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन (Pleistocene) युग में हुआ था। अभिनूतन युग (20 लाख वर्ष पूर्व) एक भूवैज्ञानिक काल है, जिसमें बर्फ युग अपने अन्तिम चरण में था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। पुरापाषाण युग के पत्थर के औजारों के वर्गीकरण के संबंध में भारत के पुरातत्ववेत्ताओं के बीच मतभेद है:

- कुछ विद्वान धारदार ब्लेड (Blade) और लक्षणी वाले काल को "उच्च पुरापाषाण" कहते हैं।
- कुछ विद्वान उच्च पुरापाषाण को यूरोपीय पुरापाषाण संस्कृति से जोड़ते हैं।

पर अब उच्च पुरापाषाण का प्रयोग भारतीय संदर्भ में भी होता है।

3.2.1 पुरापाषाण युग के औजार

पर्यावरण और जलवायु में हुए परिवर्तन और मनुष्य द्वारा बनाए गए पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में बांटा गया है।

- निचले पुरापाषाण चरण के औजारों में मुख्यत: हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औजार आदि हैं।
- मध्य पुरापाषाण युगीन उद्योग काटने के औजारों पर आधारित था, और
- उच्च पुरापाषाण युग की विशेषता थी — तक्षणी और खुरचनी।

अब हम इस काल के कुछ औजारों और उनके उपयोग के बारे में चर्चा करेंगे।

- हाथ की कुल्हाड़ी (Handaxe) — इसका मूठ चौड़ा और आगे का हिस्सा पतला होता है। इसका उपयोग काटने या खोपने के लिए होता होगा।
- चीरने का औजार (Cleaver) — इसमें दुहरी धार होती है। इसका उपयोग पेड़ों को काटने और चीरने के लिए होता था।
- काटने के औजार (Chopper) — एक बड़ा स्थूल औजार जिसमें एक तरफा धार होती है और इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है।
- काटने का औजार (Chopping tool) — यह भी चौपर के समान एक बड़ा स्थूल औजार है पर इसमें दुहरी धार होती है, और इसमें कई पट्टे होते हैं। इसका उपयोग भी किसी चीज को काटने के लिए होता था, पर अधिक नुकीली धार वाला होने से यह चौपर से अधिक कारगर होता था।
- पत्तर (Flake) — यह एक प्रकार का औजार होता है, जिसे पत्थर को तोड़कर बनाया जाता है। पत्तर की सतह पर सकारात्मक समाघात और इसके सारभाग में एक नकारात्मक

समाघात (Negative bulb of percussion) होता है। जिस स्थान पर पत्थर के हथौड़े से चोट की जाती है उसे समाघात स्थल कहते हैं। इस चोट से जो गोल, हल्का उत्तल हिस्सा कट कर निकलता है उसे सकारात्मक समाघात कहते हैं। इस चोट के परिणाम स्वरूप सारभाग का जो हिस्सा अवतल हो जाता है उसे नकारात्मक समाघात कहते हैं। पत्तर बनाने की कुछ तकनीकें हैं: फ्री फ्लेकिंग तकनीक, स्टेप फ्लेकिंग तकनीक, ब्लॉक आन ब्लॉक तकनीक, द्विध्रुवीय तकनीक आदि।

- खुरचनी (Side scraper) — इसमें एक पत्तर या ब्लेड होता है और इसका किनारा धारदार होता है। इसका उपयोग पेड़ की खाल या जानवरों का चमड़ा उतारने में किया जाता होगा।
- तक्षणी (Burin) — यह भी पत्तर या ब्लेड के समान ही होता है, पर इसका किनारा दो तलों के मिलने से बनता है। तक्षणी के काम वाले हिस्से की लम्बाई 2–3 से. मी. से अधिक नहीं होती है। इसका उपयोग मुलायम पत्थरों, हड्डियों, क्रोड़ों या गुफाओं की दीवारों पर नक्काशी के लिए होता है।

3.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम पढ़ेंगे कि शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा प्रयुक्त औजार पुरातत्ववेत्ताओं को किन-किन क्षेत्रों में मिले हैं। इन औजारों के क्षेत्रीय फैलाव के बारे में पता चलने पर न केवल हमें शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के निवास स्थलों का पता चलेगा, बल्कि उस पर्यावरण की भी जानकारी मिलेगी, जिसमें वे रहते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में इनका अध्ययन करें:

i) कश्मीर घाटी दक्षिण पश्चिम में पीर जंगल पहाड़ियों और उत्तर पूर्व हिमालय से घिरी है। कश्मीर में लिद्दर नदी के किनारे पहलगांव से एक हाथ की कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी। किंतु पुरापाषाण युग के औजार कश्मीर में ज्यादा नहीं मिलते क्योंकि हिमानी युग में कश्मीर में अत्यधिक ठंड होती थी। पोतवार क्षेत्र (आज का पश्चिमी पंजाब और पाकिस्तान) पीर पंजल और नमक पर्वत श्रृंखला के बीच में पड़ता है। इस इलाके में विर्वतनिक बदलाव आया था और इस क्रम में सिंधु और सोहन नदियों की उत्पत्ति हुई थी। सोहन घाटी में हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार मिले हैं। ये औजार अडियाल, बलवाल और चौन्टरा जैसी महत्वपूर्ण पुरापाषाणीय बस्तियों में पाये गए हैं। ब्यास, बाण, गंगा और सिरसा नदियों के किनारे भी पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं।

ii) लूनी नदी (राजस्थान) के आसपास के क्षेत्र में कई पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। लूनी नदी का उद्गम अरावली क्षेत्र में हुआ था। चित्तौड़गढ़ (गंभीर नदी घाटी) कोटा (चंबल नदी घाटी) और नगरई (बेराच नदी घाटी) में पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। मेवाड़ की वगांव और कदमली नदियों के आसपास भी मध्य पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। इन इलाकों से कई प्रकार की खुरचनी, बेधक औजार और नुकीले औजार भी पाए गए हैं।

iii) गुजरात में साबरमती, माही और उनकी सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। साबरमती नदी अरावली से निकल कर खम्बात की खाड़ी में जा गिरती है। ओरसंग घाटी के नजदीक भंडारपुर में भी मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सौराष्ट्र में भद्दर नदी के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, काटने के औजार, नुकीले औजार, बेधक औजार आदि। कच्छ क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार मिले हैं जैसे — खुरचनी, हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औजार।

iv) नर्मदा नदी मैकॉल पर्वत श्रृंखला से निकलती है और खम्बात की खाड़ी में जाकर मिल जाती है। नर्मदा के समतलों में पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं, जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां और चीरने के औजार। विंध्य क्षेत्र में अवस्थित भीमबेतका (भोपाल के निकट) में पहले एश्यूलियन (Acheulian) संस्कृति के औजार उपयोग में लाए जाते थे किंतु वहां बाद में मध्य पुरापाषाण युगीन संस्कृति का आगमन हुआ।

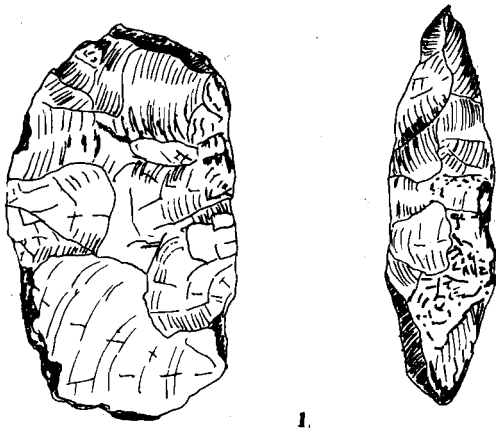

1.

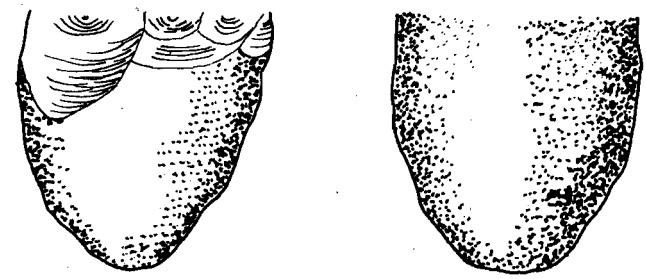

2.

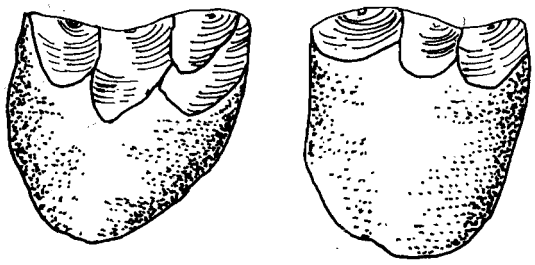

3.

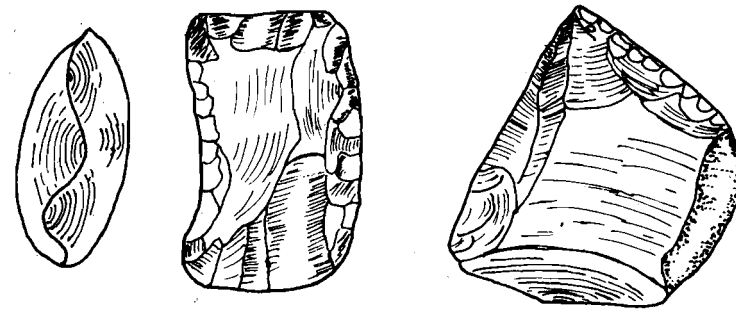

4.

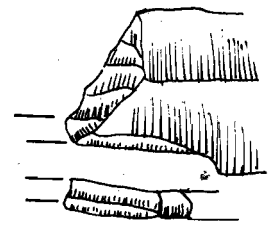

5.

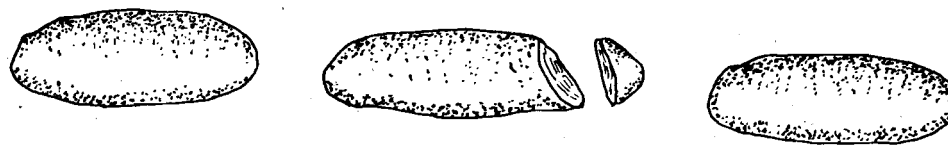

6.

1. चीरने के औज़ार, 2. काटने के औज़ार, 3. काटने के औज़ार,
4. खुरचनियां, 5. तक्षणी, 6. पत्तर

v) ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियों के आसपास भी कई पुरापाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। पुरापाषाण युग की बस्तियों की अवस्थिति का संबंध पर्यावरण संबंधी बदलाव से भी है जैसे भू-स्खलन, मिट्टी की प्रकृति आदि। ताप्ती की तलहटी में काफी गहराई तक रेगुर काली मिट्टी पाई जाती है। भीमा और कृष्णा नदियों के ऊपरी हिस्से के आसपास के क्षेत्रों में कम पुरापाषाणीय बस्तियाँ पाई गई हैं। महाराष्ट्र में नवासा के नजदीक चिरकी में हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औजार, बेधक औजार, खुरचनी और मिट्टी तोड़ने के औजार पाए गए हैं। महाराष्ट्र में कोरेगांव, चन्दौली और शिकारपुर पुरापाषाण युग की अन्य प्रमुख बस्तियाँ हैं।

vi) पूर्वी भारत में रासे नदी (सिंहभूम, बिहार) में भी हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औजार, पत्तर आदि अनेक पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। सिंहभूम में भी बहुत सी पुरापाषाण युग की बस्तियाँ मिली हैं। इन बस्तियों में मुख्यत: हाथ की कुल्हाड़ियां और काटने के औजार पाए गए हैं। दामोदर और सुवर्णरेखा नदियों की घाटी से भी पुरापाषाण युग के औजारों के पाए जाने की सूचना मिली है। यहां भी पुरापाषाणीय संस्कृति की अवस्थिति स्थलाकृतिक विशेषताओं से प्रभावित हुई है। उड़ीसा में वैतरनी, ब्राहमणी और महानदी के डेल्टा क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के कुछ औजार पाए गए हैं।

उड़ीसा में म्यूरभंज में बुढार बलंग घाटी में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के कई औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, नुकीले औजार और पत्तर।

vii) माल प्रभा, घाट प्रभा और कृष्णा की सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग की कई बस्तियाँ पाई गई हैं। घाट प्रभा नदी घाटी में एश्यूलियन (Acheulian) हाथ की कुल्हाड़ियां काफी संख्या में पाई गई हैं। अंगवाडी और बागलकोट घाट प्रभा नदी के पास स्थित दो प्रमुख बस्तियाँ हैं जहां प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के औजार पाए गए हैं। तमिलनाडु में पलर, पेनियारे और कावेरी में भी पुरापाषाण युग के अनेक औजार पाए गए हैं। अतिरमपक्कम और गुडिडयम में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युगीन औजार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, पत्तर, ब्लेड आदि।

3.2.3 जीवन यापन के तरीके

पुरापाषाण युग की बस्तियों में भारतीय और विदेशी मूल के जानवरों के अवशेष काफी मात्रा में पाए गए हैं। नर बानर, जिराफ, कस्तूरी मृग, बकरी, भैंसा, गाय और सूअर स्वदेशी मूल के पशु प्रतीत होते हैं। ऊँट और घोड़े से उत्तरी अमरीका से संबंध का पता चलता है। दरियाई घोड़ा और हाथी मध्य अफ्रीका से भारत आये थे। ये हिमालय की पूर्वी और पश्चिमी सीमा से होकर आये होंगे। अधिकांश जानवर भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा से होकर आये। उस समय अफ्रीका और भारत के बीच काफी आदान-प्रदान होता था।

पुरापाषाण युग के मनुष्य भोजन के लिए किन स्रोतों पर निर्भर करते थे ? इस बारे में जानकारी जानवरों के अवशेषों से मिलती है। इन अवशेषों से पता चलता है कि लोग शिकारी और संग्रहकर्त्ता अवस्था में थे। एक इलाके में रहने वाले मनुष्यों और पशुओं की संख्या के बीच संतुलन रहा होगा। उस समय के लोगों ने आसपास पाये जाने वाले पशुओं और पेड़ों का भोजन के रूप में उपयोग किया होगा। मनुष्य छोटे और मध्यम आकार के जानवरों, विशेषत: खुरों वाले पशुओं का शिकार करता होगा। साथ ही वह हिरण, गैंडे और हाथी का भी शिकार करता होगा। इस काल में किसी खास प्रकार की शिकारी प्रवृत्ति का पता नहीं चलता है। कहीं-कहीं कुछ विशेष प्रकार के जानवरों के अवशेष बहुतायत में पाए गए, लेकिन इसका कारण यह है कि उस इलाके में उन विशेष जानवरों की बहुतायत थी और उनका शिकार करना आसान था। ऐसा लगता है कि शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा पशुओं और पेड़ों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करना काफी हद तक शुष्क/आद्र ऋतुचक्र पर आधारित था। पुरापाषाण युग के लोग मुख्य रूप से बैल, गवल, नीलगाय, भैंसा, चिंकारा, हिरण, बारहसिंगे, साम्भर, जंगली सूअर, कई तरह के पक्षियों, कछुओं, मछलियों, मधु और फलदायक पौधों के फलों, मूल, बीज और पत्तों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

यह कहा जाता है कि आज के वर्तमान शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा शिकार किए जाने वाले जानवरों से अधिक महत्व शिकारी /संग्रहकर्त्ताओं द्वारा संग्रहित भोजन का है। संग्रहित भोजन

के अवशेष शिकार के अवशेषों की तुलना में अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। पुरापाषाण युग के लोगों की खाने-पीने की आदतों के बारे में पता लगाना मुश्किल है। ये लोग किस प्रकार के पौधों या फलों का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे इस बारे में हमें उस प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है जैसी कि आजकल के शिकारी /संग्रहकर्त्ता समूहों के बारे में उपलब्ध हैं। यह मुमकिन है कि पुरापाषाण युग के लोग पशुओं के साथ-साथ फल-फूल को भी भोजन के रूप में इस्तेमाल करते होंगे।

पत्थर पर की गई चित्रकारी और खुदाई से भी हमें पुरापाषाण युग के लोगों के रहन-सहन और सामाजिक जीवन के बारे में पता चलता है। सबसे पुरानी चित्रकारी उत्तर पुरापाषाण युग की है। विन्धय क्षेत्र में स्थित भीमवेटका में विभिन्न कालों की चित्रकारी देखने को मिलती है। प्रथम काल में उत्तर पुरापाषाण युग की चित्रकारी में हरे और गहरे लाल रंग का उपयोग हुआ है। इन चित्रों में भैंसे, हाथी, बाघ, गैंडे और सूअर के चित्र प्रमुख हैं। ये चित्र काफी बड़े हैं और कुछ की लंबाई 2 से 3 मीटर तक है। पुरापाषाण युग के लोगों के शिकारी जीवन की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के जानवरों के कितने और किन रूपों में चित्र मिले हैं इसका बारीकी से अध्ययन करना होगा। खुदाई और चित्रकारी से पता चलता है कि शिकार ही जीवन यापन का मुख्य साधन था। इन चित्रों में बनी शारीरिक संरचना के आधार पर पुरुष और स्त्री में सरलता से भेद किया जा सकता है। इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि पुरापाषाण युग के लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे और उनका जीवन निर्वाह पशुओं और पेड़ पौधों पर निर्भर था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी: निम्नलिखित प्रश्नों को सावधानी से पढ़ें और सही तथा सबसे उपयुक्त उत्तर पर निशान लगायें।

1 सामाजिक विकास का कौन सा काल शिकारी/संग्रहकर्ता चरण का प्रतिनिधित्व करता है:

क) पुरापाषाण युग

ख) मध्य पाषाण युग

ग) पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग

घ) नवपाषाण युग

2 प्रागैतिहासिक शिकारी/संग्रहकर्त्ता समाज का अध्ययन कैसे किया जाता है ?

क) लिखित स्रोतों की सहायता से

ख) मुद्रा विषयक स्रोतों की सहायता से

ग) शिलालेख स्रोतों की सहायता से

घ) पुरातत्व अवशेषों की सहायता से

3 अभिनूतन (Pleistocene) युग:

क) बहुत ठंडा था।

ख) बहुत गर्म था।

ग) तापक्रम सामान्य था।

घ) बहुत सूखा था।

4 पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में निम्नलिखित में से किस आधार पर विभाजित करते हैं:

क) जलवायु में परिवर्तन

ख) पत्थर के औजारों के प्रकार

ग) पशु-पक्षी अवशेषों

घ) पत्थर के औजारों के प्रकार, मौसम में परिवर्तन और पशु-पक्षी अवशेषों

5 पुरापाषाण युग की अर्थव्यवस्था:

क) भोजन उत्पादन पर आधारित थी।

ख) शिकार पर आधारित थी।

ग) जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

घ) जानवरों के शिकार और जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

3.3 मध्य पाषाण युग

मध्य पाषाण युग का आरम्भ ई. पूर्व 8000 के आसपास हुआ। यह पुरापाषाण और नव पुरापाषाण युग के बीच का संक्रमण काल है। धीरे-धीरे तापक्रम बढ़ा और मौसम गरम और सूखा होने लगा। परिवर्तन से मनुष्य का जीवन प्रभावित हुआ। पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों की किस्मों या प्रजातियों में भी परिवर्तन आया। औजार बनाने की तकनीक में परिवर्तन हुआ और छोटे पत्थरों का उपयोग किया जाने लगा। मनुष्य मूलत: शिकारी-संग्रहकर्त्ता ही रहा, पर शिकार करने की तकनीक में परिवर्तन हो गया। अब न केवल बड़े बल्कि छोटे जानवरों का भी शिकार करने लगा। मछलियाँ पकड़ने लगा और पक्षियों का भी शिकार करने लगा। यह भौतिक और पारिस्थितिकी परिवर्तन पत्थर पर हुई चित्रकारी से भी प्रतिबिम्बित होता है। अब हम इस युग में उपयोग में लाए जाने वाले कुछ औजारों की चर्चा करेंगे।

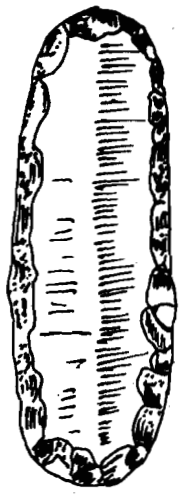

2. ब्लेड

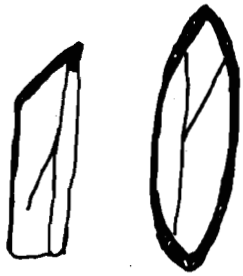

3. नुकीला औजार

4. त्रिकोण

5. नवचन्द्राकार

3.3.1 मध्य पाषाण युग के औजार

मध्य पाषाण युग के औजार छोटे पत्थरों से बने हुए हैं। ये सूक्ष्म औजार आकार में काफी छोटे हैं और इनकी लम्बाई 1 से 8 से. मी. तक है। कुछ सूक्ष्म औजारों का आकार ज्यामितीय होता है। ब्लेड, क्रोड़, नुकीले, त्रिकोण, नवचन्द्राकार और कई अन्य प्रकार के औजार मध्य पाषाण काल में उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य ज्यामितीय औजार हैं। इनके अलावा इस काल में पुरापाषाण युग के औजार जैसे तक्षणा, खुरचनी और यहां तक कि गंडासा भी मिलते हैं।

i) **ब्लेड (Blade) :** यह एक प्रकार का विशेषीकृत पत्तर होता है। इसकी लम्बाई इसकी चौड़ाई से दुगनी होती है। इनका उपयोग संभवत: काटने के लिए किया जाता होगा। मध्य पाषाण युग में औजार बनाने की तकनीक को फ्लूटिंग (Fluting) कहा जाता है। इसमें सार मात्र पर प्लेटफार्म के नुकीले सिरे से प्रहार किया जाता है। हमें कुछ धारदार ब्लेड भी मिले हैं। ये चौड़े, मोटे और लंबे होते हैं। ब्लेड को धार देने से उसमें पैनापन आता है। कुछ ऐसे ब्लेड पाए गए हैं, जिनके एक या दोनों सिरे धारदार होते हैं अन्यथा दोनों किनारे धारदार होते हैं। ये ब्लेड साधारण ब्लेडों से कहीं अधिक पैने तथा कारगर होते हैं।

ii) **क्रोड (Core) :** क्रोड साधारणतया आकार में बेलनाकार होता है जिसकी पूरी लंबाई में फ्लूटिंग के निशान होते हैं और इसमें एक सपाट प्लेटफार्म होता है।

iii) **नुकीला औजार (Point) :** नुकीला औजार एक प्रकार का टूटा तिकोना ब्लेड होता है। इसके दोनों सिरे ढलवां तथा धारदार होते हैं। इसके सिरे सरल रेखीय या वक्र रेखीय भी हो सकते हैं।

iv) **त्रिकोण (Triangle) :** इसमें साधारणत: एक सिरा और एक आधार होता है और सिरे को धारदार बनाया जाता है। इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है या इसे तीर के अग्र भाग में भी लगाया जाता है।

v) **नवचन्द्राकार (Lunate) :** नवचन्द्राकार औज़ार भी एक तरह का ब्लेड होता है लेकिन इसका एक सिरा वृत्ताकार होता है। यह एक वृत्त के हिस्से के समान मालूम होता है। इनका उपयोग अवतल कटाई के लिए किया जा सकता था या ऐसे दो औजारों को मिलाकर तीर का अग्रभाग तैयार किया जा सकता था।

vi) **समलम्ब औजार (Trapeze) :** यह भी एक ब्लेड के समान ही दिखाई पड़ता है। इसके एक से अधिक सिरे धारदार होते हैं। किसी-किसी समलम्ब औजारों के तीन सिरे धारदार होते हैं। इनका उपयोग तीर के अग्रभाग के रूप में होता होगा।

6. समलम्ब औजार

3.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम भारत में मध्य पाषाण युग की महत्वपूर्ण बस्तियों के विषय में चर्चा करेंगे।

i) पचपद्र नदी घाटी और सोजत (राजस्थान) इलाके में सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में मिले हैं। यहां पाई गई एक महत्वपूर्ण बस्ती तिलवारा है। तिलवारा में दो सांस्कृतिक चरण पाए गए हैं। पहला चरण मध्य पाषाण युग का प्रतिनिधित्व करता है तथा इस चरण की विशेषता सूक्ष्म औजारों का पाया जाना है। दूसरे चरण में चाक पर बने हुए मिट्टी के बर्तन और लोहे के टुकड़े इन सूक्ष्म औजारों के साथ पाए गए हैं। मध्य पाषाण युग की बड़ी बस्तियों में से एक है — बगोर (राजस्थान) जो कोठारी नदी के किनारे स्थित है। बगोर में खुदाई की गई तो तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गईं। रेडियो कार्बन डेटिंग से अवस्था- I या संस्कृति की सबसे प्रारंभिक अवस्था का समय 5000 से 2000 ई. पू. निश्चित किया गया है

ii) गुजरात में ताप्ती, नर्मदा, माही और साबरमती नदियों के आसपास भी कई मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अक्खज, बलसाना, हीरपुर और लंघनाज साबरमती नदी के पूरब में स्थित हैं। लंघनाज का विस्तार से अध्ययन किया गया है। लंघनाज में तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गई हैं। अवस्था- I में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। सूक्ष्म औजारों में ब्लेड, त्रिकोणीय औजार, अर्धचन्द्रकार औजार, खुरचनी और तक्षणी आदि प्रमुख हैं।

iii) विन्ध्य और सतपुरा इलाके में मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। इलाहाबाद में प्रतापगढ़ इलाके में सराय नहर राय (उत्तर प्रदेश) का विस्तार से अध्ययन किया गया है। कैमूर पर्वत श्रृंखला में मध्य पाषाण युग की दो प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं — मोरहाना पहाड़ (उत्तर प्रदेश) और लेखहीया (उत्तर प्रदेश)। भीमबेटका (मध्य प्रदेश) में अनेक सूक्ष्म औजार मिले हैं। भीमबेटका में पारिस्थितिकी संतुलन बसने के लिए अनुकूल था। भीमबेटका के दक्षिण में आदमगढ़ (होशंगाबाद) में मध्य पाषाण युग की एक प्रमुख बस्ती पाई गई है।

iv) कोंकण के तटीय इलाके और आन्तरिक पठार में भी मध्य पाषाण युग के औजार पाए गए हैं। कोंकण इलाके में कसूशोअल, जनयेरी, दमालगो और जलगढ़ जैसी कुछ प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं। असिताश्म के बने दक्षिण पठार में भी अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। धुलिया और पूना जिले में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।

v) छोटा नागपुर पठार, उड़ीसा के तटीय मैदानी क्षेत्र, बंगाल डेल्टा, ब्रहमपुत्र घाटी और शिलांग पठारी इलाके में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। प्राक् नवपाषाण युग के सूक्ष्म औजार छोटा नागपुर पठार में पाए गए हैं। मयूरभंज, कियोनझर और सुन्दरगढ़ में भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी के किनारे बीमानपुर की भी खुदाई हुई है। यहां पर भी सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। मेघालय की गारो पहाड़ियों में स्थित सेबालगिरी- 2 में भी प्राक् नव पाषाणयुगीन सूक्ष्म औजार पाए गए हैं।

vi) कृष्णा और भीमा नदी में भी अनेक सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। ये सूक्ष्म औजार नव पाषाण संस्कृति के चरण में भी पाए गए हैं। कर्नाटक पठार के पश्चिमी किनारे पर स्थित संगनकल में अनेक औजार मिले हैं जैसे क्रोड़, नुकीले औजार, अर्धचन्द्राकार पत्तर आदि।

गोदावरी डेल्टा में भी सूक्ष्म औजार काफी मात्रा में पाए गए हैं। यहां पर पाए गए ये औजार नवपाषाणीय संस्कृति से सम्बद्ध हैं। कुरनूल इलाके में भी काफी मात्रा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर इलाके में रेणीगुंटा में सूक्ष्म औजार पाए गए हैं। चूंकि मध्य पाषाण युग की काल सीमा काफी लंबी थी और भारत में अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अत: विभिन्न बस्तियों को कालक्रमानुसार और वहां प्राप्त भौतिक अवशेषों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। कालक्रम तथा सूक्ष्म औजारों की बहुतायत मध्य पाषाण युग के सूचक हैं। कुछ बस्तियाँ कालक्रमानुसार बाद की हैं और

मध्य पाषाण संस्कृति से प्रभावित हैं। ये सभी बस्तियाँ मध्य पाषाणीय परम्परा की बस्तियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। बगोर, सराय-नहर राय, और अदमगढ़ में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई है।

3.3.3 जीवन यापन के तरीके

आरंभिक मध्यपाषाणीय बस्तियों से जानवरों जैसे भेड़, बकरी, भैंस, सूअर, कुत्ता, हाथी, दरियाई घोड़ा, बनैले सूअर, गवल, गीदड़, मेड़िए, चीते, साम्भर, बारह सिंघे, खरगोश, काले हिरण, मृग, कछुए, साही, नेवले, छिपकली, मवेशियों आदि के अवशेष पाए गए हैं। इनमें से बहुत सी प्रजातियां मध्य पाषाण परम्परा के अंतर्गत विद्यमान रहीं। मध्य पाषाणीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियों से जंगली भेड़, जंगली बकरी, गदहा, हाथी, लोमड़ी, गवल, दरियाई घोड़ा, साम्भर, खरगोश, साही, छिपकली, चूहा, मुर्गी, कछुआ आदि नहीं पाए गए हैं। जंगली भैंसा, ऊँट, मेड़िया, गैंडा और नीलगाय मध्य पाषाणीय परम्परा के अंतर्गत पाए गए हैं। ये प्रजातियां आरंभिक मध्यपाषाणीय युग में अनुपस्थित थीं। किसी विशेष काल में पशुओं का पाया जाना और न पाया जाना वस्तुतः जलवायु और पर्यावरण संबंधी परिवर्तन पर निर्भर करता है।

मध्य पाषाण युग के दौरान लोग शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन खाते थे। मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियों जैसे लंघनाज और तीलवारा से मछली, कछुए, खरगोश, नेवले, साही, मृग, नीलगाय के अवशेष पाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन के रूप में इनका उपयोग किया जाता होगा। शिकार करने और मछली मारने के अलावा मध्य पाषाण युग के लोग जंगली कन्द मूल, फल और मधु आदि का भी संग्रह करते थे और यह उनके भोजन का पूर्ण हिस्सा था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौधों से प्राप्त भोजन शिकार से प्राप्त भोजन की अपेक्षा अधिक सुलभ था। कुछ इलाकों में घास, खाने योग्य जड़, बीज, काष्ठफल और फल काफी मात्रा में उपलब्ध थे और लोग भोजन के साधन के रूप में इनका उपयोग करते होंगे। कुछ वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि उनका मुख्य भोजन फल-फूल ही है। शिकार से प्राप्त भोजन केवल पूरक का ही काम करता है। मध्य पाषाण युग के संदर्भ में पशु मांस और पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन के बीच तारतम्य स्थापित करना मुश्किल है, क्योंकि पौधों के अवशेष जल्दी नष्ट हो जाते हैं। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि काफी हद तक भोजन की पूर्ति शिकार के माध्यम से होती थी।

पत्थर की गुफाओं की दीवारों पर बनाए गये चित्रों और नक्काशियों से मध्य पाषाण युग के सामाजिक जीवन और आर्थिक क्रिया कलाप से संबंधित काफी जानकारी मिलती है। भीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर मध्य पाषाण युग की कला और चित्रकला की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन चित्रों से शिकार करने, भोजन जुटाने, मछली पकड़ने और अन्य मानवीय

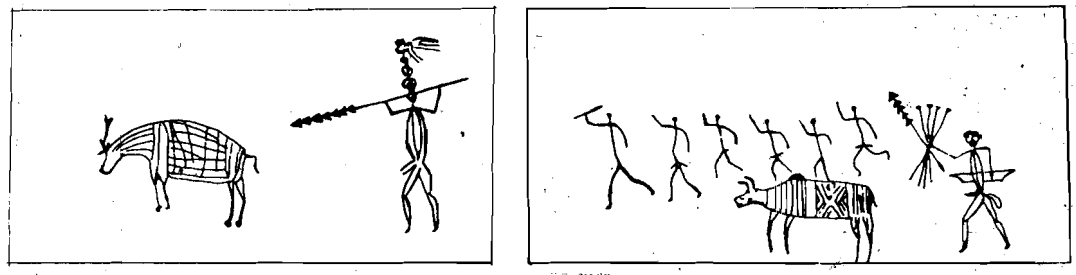

7. मध्य पाषाण युग के चित्र

क्रिया कलापों की भी झलक मिलती है। भीमबेटका में भी काफी चित्र बने मिले हैं। इनमें बहुत से जानवरों जैसे जंगली सूअर, भैंसे, बन्दर और नीलगाय के चित्र बने मिले हैं। इन चित्रों और नक्काशियों से यौन संबंधों, बच्चों के जन्म, बच्चे के पालन पोषण और शव दफन से संबंधित अनुष्ठानों की भी झलक मिलती है। इन सब बातों से यह संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युग में पुरापाषाण युग की अपेक्षा सामाजिक संगठन अधिक सुदृढ़ हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य पाषाण युग के लोगों का धार्मिक विश्वास पारिस्थितिकी और भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित था।

बोध प्रश्न 2

1 मध्य पाषाण युग के औजार हैं:

क) हाथ की कुल्हाड़ी और चीरने के औजार

ख) चीरने के औजार और काटने के औजार

ग) ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार और नवचन्द्राकार औजार

घ) काटने के औजार और पत्तर

2 निम्नलिखित स्थानों में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं:

क) कोठारी नदी

ख) ताप्ती नदी

ग) गोदावरी डेल्टा

घ) कोठारी नदी, ताप्ती नदी और गोदावरी डेल्टा

3 निम्नलिखित कथनों में से सबसे सही कथन कौन सा है:

क) मध्य पाषाण युग के लोगों का जीवन यापन जानवरों के शिकार पर निर्भर था।

ख) उनका जीवन जंगली कंदमूल फल के संग्रह पर निर्भर था।

ग) वे जानवरों का शिकार करते थे और जंगली फलों का संग्रह करते थे।

घ) उनका जीवन अधिशेष खाद्य उत्पादन पर निर्भर था।

4 मध्य पाषाण युग के औजारों और चित्रकला के आधार पर मध्य पाषाण युग के जीवन-यापन ढांचे और सामाजिक संगठनों पर प्रकाश डाले। (10 पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 सारांश

शिकारी/संग्रहकर्त्ता प्रागैतिहासिक समुदायों का अध्ययन पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। इस अध्ययन में मानवशास्त्रीय सिद्धांत सहायता प्रदान करते हैं। सामाजिक विकास के क्रम में पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग शिकारी/संग्रहकर्त्ता अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। जलवायु में हुए परिवर्तन और पत्थर के औजारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक पुरापाषाण के औजार हाथ की कुल्हाड़ियां, चीरने और काटने के औजार हैं। मध्य पुरापाषाण युग के मुख्य औजार पत्तर हैं। उच्च पुरापाषाण संस्कृति के मुख्य औजार तक्षणी और खुरचनी हैं। मध्य पाषाण युग 8000 ई. पू. से शुरू होता है। इस युग में जलवायु में परिवर्तन हुए। इस दौरान सूक्ष्म औजार और छोटे पत्थर के औजार बनाने की दिशा में तकनीकी विकास भी हुए। मध्यपाषाण औजारों में ब्लेड, क्रोड़, नुकीले औजार, त्रिकोणीय औजार और नवचंद्राकार औजार मुख्य हैं।

जीव जन्तुओं के अवशेषों से भी पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग के लोगों के जीवन यापन के बारे में काफी जानकारी मिलती है। पुरापाषाण युग में लोग मुख्यत: शिकारी/संग्रहकर्त्ता थे। ये

लोग बड़े और छोटे आकार के पशुओं जैसे हाथी, बैल, नीलगाय, हिरण, जंगली भालू और कई प्रकार के पक्षियों का शिकार करते थे। इसके अतिरिक्त ये फल, बीज आदि का भी आहार के रूप में प्रयोग करते थे। मध्य पाषाण युग में भी मनुष्य शिकारी/संग्रहकर्त्ता ही था। हालांकि कुछ नये जानवर जैसे जंगली बकरा, लोमड़ी आदि भी इस काल में पाए जाते थे। पुरापाषाण युग और मध्य पाषाण युग की शिकार प्रवृत्ति में एक मूलभूत अन्तर है। पुरापाषाण युग में लोग बड़े जानवरों का शिकार करते थे जबकि मध्य पाषाण युग में छोटे जानवरों का भी शिकार किया जाने लगा और मछलियाँ मारी जाने लगीं। प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला उस युग के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती है।

3.5 शब्दावली

एश्यूलियन (Acheulian) : यह एक प्रकार की हाथ की कुल्हाड़ी है। ये कुल्हाड़ियां आरंभिक हिम युग के दिनों की हैं, ये सबसे पहले फ्रांस में पायी गयी हैं।

शिल्प अवशेष: कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य द्वारा बनाई तथा उपयोग में लाई जाए। इसके अन्तर्गत अपरिष्कृत पत्थर से लेकर आधुनिक तकनीक से बनी कोई भी वस्तु शामिल हो सकती है।

संकलन: विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का समुच्चय जिनका आपस में अंतर्सम्बंध हो। जब यह संकलन अनेक बार पाया जाता है और मानव गतिविधि का पूर्ण रूप से विवरण देता है तब उसे संस्कृति कहते हैं।

व्यासमापन: रेडियो कार्बन तिथि अंकन में इस शब्द का इस्तेमाल किया जाता है।

अवतल: अन्दर की तरफ धंसा हुआ, बीच की परत किनारे की परत से पतली।

उत्तल: बाहर की तरफ उठा हुआ और बीच का भाग, किनारे की अपेक्षा मोटा।

मानवजाति वर्णन: इसमें संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पारिस्थितिकी: पशु जीवन और पौधों के जीवन का अंतर्सम्बन्ध।

पुरालेखशास्त्र: इसमें शिलालेखों का अध्ययन किया जाता है।

वनस्पति: इस विज्ञान के अंतर्गत पौधों के जीवन का अध्ययन किया जाता है।

जीव-जंतु विज्ञान: इसमें पशुओं के जीवन का अध्ययन होता है।

भू-विज्ञान: इसमें पृथ्वी की बनावट, संरचना और इतिहास का अध्ययन होता है।

हिमाच्छादन: ठंडी जलवायु का काल जिसमें बर्फ की मात्रा अधिक थी, कई हिमाच्छादन मिलकर एक हिम-युग बनाते हैं।

स्तनधारी: ऐसे जानवर जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं।

मुद्राशास्त्र: इसमें मुद्रा का अध्ययन किया जाता है।

पराग विश्लेषण: इस तकनीक का उपयोग कालक्रम स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसमें फूलों के पराग का विश्लेषण किया जाता है।

नर वानर: स्तनधारी जीव (मानव, बंदर, लंगूर आदि)।

आयत: समकोण चतुर्भुज।

सरल रेखीय: जिसमें सीधी रेखा हो।

रेडियो कार्बन: ऐसी विधि जिसके द्वारा 70,000 वर्ष पुरानी कार्बनिक वस्तु के काल का पता लगाया जा सकता है। पौधे और अन्य जीव अपने जीवन काल में वातावरण से कार्बन ग्रहण करते हैं। इसमें कार्बन 14 (14सी) भी रहता है, जो रेडियोधर्मी तत्व है। पौधों और जीवों के मरने के बाद इस कार्बन की मात्रा कम होने लगती है। इस प्रकार कार्बन की मात्रा से अवशेषों की पुरातनता का पता चल जाता है।

अनुप्रस्थ: चौड़ाई के मुताबिक।

कगार: नदी के किनारों के आसपास की जमीन।

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क, 2) घ, 3) क, 4) घ, 5) घ

बोध प्रश्न 2

1) ग, 2) घ, 3) ग

4) इस प्रश्न का उत्तर देने की प्रक्रिया में आपको अपनी कल्पना का सहारा लेना होगा और आपको समझना होगा कि किस प्रकार दीवारों पर बने चित्र तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक चित्र जिसमें कुछ लोग मिलकर जानवर का शिकार कर रहे हैं, इससे छोटे सामाजिक समुदायों की स्थापना के विषय में पता चलता है। इससे उनकी आहार प्रवृत्ति और औजारों के प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है। देखें उपभाग 3.3.1 ।

इकाई 4 कृषि और पशु पालन का आरम्भ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण
4.3 सबसे प्राचीन किसान
  4.3.1 नील घाटी
  4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान
4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान
  4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र
  4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति
  4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान
  4.4.4 बिहार /मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति
  4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारंभिक किसान
  4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारंभिक किसान
  4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में धातुओं का उपयोग होने के चरण से पहले कृषि के प्रारम्भ और पशुओं को पालने की शुरुआत पर विचार किया गया है। अनाजों की खेती और कृषि के विकास से यायावर शिकारी /संग्राहक स्थानबद्ध कृषक बन गया। इससे गांव की बस्तियों की और नए प्रकार के उपकरणों के विनिर्माण की शुरुआत हुई। मानव के विकास के इस चरण को नवपाषाण चरण कहा जाता है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित के विषय में सीख सकेंगे:

- संस्कृति के नवपाषाण चरण के विशिष्ट लक्षण,
- नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों, उगाए गए पौधों आदि के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य जिनसे कृषि की शुरुआत प्रदर्शित होती है,
- पश्चिम एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि के स्वरूप,और
- भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग क्षेत्रों में उगाई विभिन्न फसलें।

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में आपने पढ़ा है कि सामान्यत: मानव समुदाय अपने अस्तित्व में सबसे अधिक लम्बे समय तक शिकारी /संग्राहक के रूप में जीवित रहे। उनके अस्तित्व का यह चरण उनके पत्थर के औज़ारों से प्रकट होता है, जिन्हें पुरातत्वविदों ने निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया है:

i) पूर्व पाषाण, और

ii) मध्य पाषाण

इनके औजारों द्वारा जिन पशुओं का शिकार किया गया है उनके अवशेषों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया है। मानव समुदायों ने संस्कृति के एक नए चरण में उस समय प्रवेश किया, जब जीवित रहने के लिए उन्होंने प्रकृति के साधनों पर पूरी तरह से निर्भर रहने

की बजाए जौ, गेहूं और चावल जैसे अनाज उगाकर अपने भोजन का स्वयं उत्पादन करना शुरू किया और दूध तथा मांस की पूर्ति के लिए और विभिन्न प्रयोजनों के वास्ते उनके श्रम का उपयोग करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पशुओं को पालना शुरू किया। मानव संस्कृति के इस चरण की शुरुआत नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों से पता चलती है जो औज़ार नवपाषाण औज़ार अथवा नव पाषाण युग के औज़ार कहलाते हैं। नवपाषाण औज़ार और चरण से सम्बद्ध मानव जीवन के विभिन्न पहलू, जब यह औज़ार बनाए गए थे, संस्कृति के उस चरण के विभिन्न तत्व हैं जिनमें यह नवपाषाण समुदाय रहे थे। इस इकाई में नील घाटी और पश्चिम एशिया में नवपाषाण संस्कृति के प्रसार तथा इसकी विशेषताओं पर भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण चरण के अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में, सक्षेप में विचार किया गया है।

4.2 संस्कृति का नवपाषाण चरण

वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालना संस्कृति के नवपाषाण चरण का एक मुख्य विशिष्ठ लक्षण माना गया है। नियोलिथिक (नवपाषाण) शब्द का प्रयोग सबसे पहले सर जॉन लुबॉक ने अपनी पुस्तक "**प्रिहिस्टोरिक टाइम्स**" (सर्वप्रथम 1865 में प्रकाशित) में किया था। उसने इस शब्द का प्रयोग उस युग को बताने के लिए किया था, जिस युग में पत्थर के उपकरण अधिक कुशलता से और अधिक रूपों में बनाए गए और उन पर पालिश भी की गई। बाद में वी. गॉर्डन चाइल्ड ने नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृति को अपने आप में पर्याप्त अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था बताया और माइल्स बरकिट ने इस बात पर जोर दिया कि निम्नलिखित विशिष्ट विशेषकों को नवपाषाण संस्कृति का माना जाना चाहिए:

- कृषि कार्य
- पशुओं को पालना
- पत्थर के औज़ारो का घर्षण और उन पर पालिश करना,
- मृद्भांड बनाना।

नवपाषाण की संकल्पना में इधर कुछ वर्षों में परिवर्तन हुआ है। एक आधुनिक अध्ययन में उल्लेख किया गया है कि नवपाषाण शब्द उस पूर्व-धातु चरण संस्कृति का सूचक होना चाहिए जब यहां रहने वालों ने अनाज उगाकर और पशुओं को पालतू बनाकर भोजन की विश्वस्त पूर्ति की व्यवस्था कर ली थी और एक स्थान पर टिक कर जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। फिर भी, घर्षित पत्थर के औज़ार नवपाषाण संस्कृति की सर्वाधिक अनिवार्य विशेषता है। वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालने से:

- एक स्थान पर टिककर जीवन बिताने के आधार पर ग्राम समुदायों की शुरुआत हुई,
- कृषि टैक्नोलॉजी की शुरुआत हुई,
- प्रकृति पर और अधिक नियंत्रण अथवा प्राकृतिक साधनों का संदोहन हुआ।

तथापि अपने स्वयं के उपमहाद्वीप में संस्कृति के नवपाषाण चरण के साक्ष्यों और विनिर्दिष्टताओं पर विचार करने से पहले हम मनुष्यों द्वारा, भारत से बाहर के क्षेत्रों में तथा भारतीय उपमहाद्वीप में, पशुओं को पालने और वनस्पति कृषीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत पर संक्षेप में विचार करेंगे।

चार्ट- 1

क्षेत्र	युग	खेती
नील घाटी	लगभग 12,500 ई. पू.	गेहूं और जौ
पश्चिम एशिया	8500 ई. पू. से आगे	- वही -
बलूचिस्तान	6000 ई. पू. से आगे	- वही -
उत्तर प्रदेश में बेलान घाटी	5440 – 4530 ई. पू.	चावल
दक्षिण भारत	2500 – 1500 ई. पू.	रागी

चार्ट- 1 में वह अनुमानित समय अवधि बताई गई है, जिसमें वनस्पति कृषीकरण तथा पशुओं को

4.3 सबसे प्राचीन किसान

अभी हाल तक ऐसा समझा जाता था कि वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने के कार्य की शुरुआत पश्चिम एशिया में हुई और वहां से यह विसरण के द्वारा संसार के विभिन्न अन्य क्षेत्रों में फैला। लेकिन अब मिस्र में नील घाटी तथा अन्य क्षेत्रों के हाल ही में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर, इन दृष्टिकोणों में संशोधन करना आवश्यक है।

4.3.1 नील घाटी

गेहूं और जौ की सबसे पहली खेती के बारे में जो नया साक्ष्य प्रकाश में आया है, वह निम्नलिखित स्थानों पर उत्खननों से प्राप्त हुआ है:

- वाडी कुब्बानिया (दक्षिण मिस्र में आसवान के उत्तर में थोड़ी दूरी पर स्थित)
- बाडी टस्का (आबू सिम्बेल, के पास जो अब जलमग्न है),
- कोम अम्बो (आसवान के उत्तर से कुब्बानिया स्थलों से लगभग 60 किलोमीटर दूर), और
- एसना के पास का स्थल-समूह।

इस साक्ष्य के विषय में बात यह है कि ये सभी नील घाटी में स्थित उत्तर पुरापाषाण स्थल हैं, न कि नवपाषाण स्थल।

पुरातत्वविदों ने इन स्थलों का काल-निर्धारण आज से 14500 - 13000 वर्षों के बीच किया है।

नील घाटी से प्राप्त साक्ष्यों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:

- चूंकि मिस्र के स्थलों में पशुओं को पालतू बनाए जाने के कोई प्रमाण नहीं मिलते, अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस क्षेत्र में अनाजों की खेती पशुओं को पालने से पहले आरम्भ हुई। इस प्रकार वनस्पति कृषिकरण और पशुओं के पालने के कार्य आवश्यक रूप से अन्त सम्बद्ध नहीं हैं।
- चूंकि अनाजों की खेती परवर्ती पुरापाषाण औज़ार से सम्बद्ध है, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ मामलों में अनाज उत्पादन उस नवपाषाण संस्कृति से पहले हुआ जिससे घर्षित पत्थर के औज़ार सम्बद्ध हैं।
- अनाजों की खेती से नवपाषाण क्रान्ति को बल मिला और यह खेती इस क्रान्ति से पहले हुई।
- चूंकि कुब्बानिया स्थल जंगली गेहूं और जंगली जौ, दोनों के विदित क्षेत्र से बाहर स्थित हैं, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि अन्न उत्पादन उन्हीं क्षेत्रों से शुरू हुआ, जहां पेड़-पौधे अपने जंगली रूप में विद्यमान थे।
- जैसा पहले विश्वास किया जाता था, कृषिकरण पश्चिम एशिया से शुरू नहीं हुआ।

4.3.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान

आइए, पश्चिम एशिया में विकास की प्रक्रिया पर विचार करें। इस क्षेत्र में फिलीस्तीन, सीरिया, तुर्की, इराक, कैस्पियन द्रोणी और ईरान के आसपास के क्षेत्र आते हैं। ये वे आधुनिक नगर हैं, जहां पुरातत्वविदों ने सबसे प्रारंभिक खेती करने वाली ग्राम बस्तियों का पता लगाया है। अब यह भली-भांति विदित है कि फिलीस्तीन, सीरिया और तुर्की में खेती नवें-आठवें सहस्राब्दि ई.पू. में शुरू हुई थी। यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र के शिकारियों – संग्राहकों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना छोड़ दिया और एक स्थान पर टिककर जीवन बिताना आरम्भ किया। पहले उन्होंने यह काम वन्य साधनों के संदोहन पर आश्रित रहते हुए कुछ स्थानों पर किया। मुरेबात, उत्तर सीरिया में यूफरेट्स पर आबू हरेयरा का उत्तर, और उसी नदी पर दक्षिण तुर्की में सुबेरदे जैसे स्थलों में स्थायी बस्तियां शिकार करने और बटोरने पर ही पूरी तरह से फलफूल सकती थीं। खेती में संक्रमण एक धीमी प्रक्रिया थी, परन्तु लगभग नवें सहस्राब्दि ई.पू. से ऐसा साक्ष्य मिला है कि स्थायी समुदायों का खेती को अपने स्थायी

जीवन के स्वरूप का अनिवार्य आधार बनाकर आविर्भाव हो रहा था। ऐसे अनेक स्थल हैं, जहां पश्चिम एशिया में किसानों के स्थायी समुदायों का पता चलता है:

i) 8500—7500 ई. पू. के बीच फिलीस्तीन में ज़रीको एक बड़ा गांव बन गया था, जहां कृषि के साक्ष्य तो मिले हैं, परन्तु पशुओं को पालने के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं (यह कार्य बाद में हुआ)। उत्खनन के दौरान उत्तर स्तरों में यह पाया गया कि ज़ेरीको के चारो ओर दो मीटर चौड़ी पत्थर की दीवार थी और गोल मीनारें थीं। संसार में किलेबंदी का यह एक सबसे प्रारंभिक उदाहरण है।

ii) दक्षिण तुर्की में हुयुक एक बड़ा गांव था। यहां गेहूं, जौ और मटर की खेती होती थी। मवेशी, भेड़, बकरी जैसे जानवरों को घर में पाला जाता था। कच्चे मकान, छत में होकर प्रवेश करना होता था, दो कमरों के होते थे और मकानों की दीवार मिली होती थीं। घरों की दीवारों पर तेंदुआ, फूटते हुए ज्वालामुखी और बिना सिर के मानव शवों को निगलते हुए गिद्धों के चित्र बने हुए मिले हैं। इस स्थान पर भौतिक संस्कृति के साक्ष्य मृदमांडों, पत्थर की कुल्हाड़ियों, पत्थर के आभूषणों, हड्डियों के औज़ारों, लकड़ी के कटोरों और करंडशिल्प के रूप में मिले हैं।

iii) इराक में जारमो में स्थायी रूप से बसे कृषि गांवों (6500—5800 ई. पू.) के भी साक्ष्य मिले हैं। इनमें लगभग 20 से 30 तक कच्चे मकान होते थे, प्रत्येक में एक आंगन और कई कमरे होते थे और वहां घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियां, चक्कियां, मृदभांड आदि भी होते थे। लोग गेहूं और जौ उगाते थे तथा भेड़-बकरी पालते थे।

iv) ईरान में खेती ख़ुजिस्तान के क्षेत्र में आठवें सहस्राब्दि ई. पू. के दौरान शुरू हुई। लगभग उसी समय जब फिलीस्तीन और अनातोलिया में शुरू हुई। दक्षिण ईरान में (लगभग 7,500 ई. पू. से) अली कोश में हमें ऐसे लोगों के एक जाड़े के मौसम के शिविर के साक्ष्य मिले हैं। जो लोग गेहूं और जौ की खेती करते थे। वे भेड़ भी पालते थे। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में पशु-पालन और खेती अत:सम्बद्ध थे।

पश्चिम एशिया में फसल उगाना और पशुओं को पालना कुछ स्थलों पर अंत:सम्बद्ध है, जबकि कुछ क्षेत्रों में कृषि कार्य पशुओं को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

बोध प्रश्न 1

1 संस्कृति के नवपाषाण चरण की मुख्य विशेषताओं पर लगभग दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 नील घाटी में उत्खननों से प्रारम्भिक कृषि के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रश्न उठे हैं, उन पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3 रिक्त स्थानों को भरिए:

i) गार्डन चाइल्ड के अनुसार नवपाषाण संस्कृति एक . . . (आश्रित /आत्मनिर्भर) अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था थी।

ii) . . . (घर्षित पत्थर /तांबे) के औज़ार नवपाषाण संस्कृति के अनिवार्य लक्षण रहे हैं।

iii) ज़ेरीको ऐसा सबसे प्राचीन ज्ञात गांव है, जिसमें . . . (पानी का तालाब/मिट्टी की किलेबंदी) थी।

iv) कताल हुयुक . . . (तुर्की /ईरान) में एक . . . (बड़ा /छोटा) गांव था।

4.4 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान

इस महाद्वीप में कृषीकरण और पशुओं को पालने का इतिहास वस्तुत: नवपाषाण संस्कृतियों के उदय से प्रारम्भ होता है। घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियों को छोड़कर इस उपमहाद्वीप की सभी नवपाषाण संस्कृतियां चार्ट- 2 में उल्लिखित भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत की जा सकती हैं।

चार्ट- 2

भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र — (अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान, विशेष तौर पर बलूचिस्तान में काची मैदान मिलाकर)

उत्तर क्षेत्र — (इसमें काश्मीर घाटी आती है)

दक्षिण-पूर्वी उत्तर प्रदेश — (इसमें इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, रीवा और सिंधी ज़िलों में विंध्य दृश्यांश — खास तौर पर बेलान घाटी आती है)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (उत्तरी बिहार)

पूर्वोत्तर क्षेत्र — (इसमें असम और निकटवर्ती उप-हिमालय क्षेत्र आते हैं)

मध्य पूर्वी क्षेत्र — (इसमें छोटा नागपुर का पठार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में विस्तार सहित आते हैं)

दक्षिणी क्षेत्र — (इसमें प्रायद्वीपीय भारत आता है)

इन क्षेत्रों में नवपाषाण कालीन संस्कृतियों की विशेषताओं पर हम अलग-अलग विचार करेंगे।

4.4.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र

इसी क्षेत्र (आज का अफगानिस्तान और पाकिस्तान) में हमें गेहूं और जौ की खेती की शुरुआत के सबसे पहले साक्ष्य मिले हैं। उत्तरी अफगानिस्तान में पुरातत्वविदों ने ऐसी गुफाएं खोजी हैं जहां शिकारी और संग्रहकर्ता रहते थे। इन गुफाओं में जंगली भेड़ों, मवेशियों और बकरियों की हड्डियों के अवशेष मिले हैं। 7000 ई. पू. के आसपास अफ़गानिस्तान में भेड़ और बकरियां पाली जाती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मध्य एशियाई क्षेत्र और इसकी परिधियां — जिसमें आज का पंजाब, काश्मीर, पश्चिमी पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान और

तजाकिस्तान तथा उज़बेकिस्तान के सोवियत गणराज्य और पश्चिमी त्यान शान शामिल हैं – ब्रेड गेहूं तथा स्पेल्ट गेहूं की खेती के मूल स्थान थे।

पाकिस्तान और बलूचिस्तान में कृषि और पशुओं को पालने की शुरुआत के सम्बन्ध में पुरातात्विक उत्खननों में साक्ष्य मिले हैं। बलूचिस्तान में काची के मैदानों को ऐसे अनेक लाभ प्राप्त थे और ऐसी अनेक सुविधाएं प्राप्त थीं, जिससे उस क्षेत्र में प्रारंभिक कृषि अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। भीतरी बलूचिस्तान की बंजर श्रेणियों के मध्य छोटी घाटियों में पहाड़ियों से आती नदियों द्वारा तथा बारहमासी नदी व्यवस्थाओं द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ़क से उन भूमि खंडों पर सिंचाई करना आसान हो गया था जहां उस समय वनस्पति उगती थी।

मेहरगढ़ का स्थल इसी पारिस्थितिक परिवेश में है। यह क्वेटा से लगभग 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थल पर उत्खननों से पता चलता है कि इस क्षेत्र का पूर्व मृद्भांड नवपाषाणकाल से समृद्ध हड़प्पा-काल तक एक लम्बा सांस्कृतिक इतिहास रहा है। मेहरगढ़ में नवपाषाण स्तर दो चरणों में वर्गीकरण किए गए हैं —i) प्रारंभिक अमृद्भांड (मृद्भांड रहित), और ii) उत्तरवर्ती चरण। जिन अनाजों की यहां खेती की जाती थी, उनमें जौ की दो किस्में और गेहूं की तीन किस्म शामिल थीं। अलूचा और खजूर के जले हुए बीज भी इन बस्तियों से ही प्राप्त हुये थे।

8. नवपाषाण काल के घर (मेहर गढ़)

उत्खननों के दौरान, नवपाषाण-काल (काल-I) के प्रारंभिक स्तरों में चिकारा, अनूप मृग, कुरंग जैसे जंगली जानवरों और भेड़-बकरी और मवेशियों की हड्डियों मिली हैं। लेकिन शीर्ष स्तर में (नवपाषाण निक्षेपों का उत्तरवर्ती चरण) में पालतू मवेशियों भेड़, बकरियों की हड्डियां मिली हैं। साथ ही जंगली चिकारा, सूअर और गोरखर की हड्डियां भी मिली हैं। अत: इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि भेड़-बकरियां स्थानीय रूप से पाली जाती थीं। यहां पूर्व मृद्भांड बस्ती की शुरुआत लगभग 6000 ई. पू. निर्धारित की गई है।

नवपाषाणकाल में जीविका के स्वरूप की विशेषता है प्रारंभिक कृषि और पशुओं के पालने तथा साथ ही शिकार पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था। यहां के निवासी कच्ची ईटों के आयताकार मकानों में रहते थे। कुछ संरचनाओं को छोटे वर्गाकार भागों में विभक्त कर दिया गया था और उन्हें भंडारण के लिए उपयोग में लाया जाता था। औज़ारों की किट में एक पत्थर की कुल्हाड़ी, पांच पत्थर के बसूले, पच्चीस घर्षण पत्थर और सोलह लोढ़ शामिल होते थे। इनमें विशिष्ट फलक उद्योग के सूक्ष्म पाषाण औज़ार भी प्रचुर मात्रा में होते थे। कुछ फलकों पर चमक भी है, जो कण काटने के लिए उपयोग में चकमक की विशेषता है।

मेहरगढ़ से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर लगता है कि शायद काची के मैदान मवेशी और भेड़ पालने के तथा गेहूं और जौ खेती के स्वतंत्र अधिकेन्द्र (मूल केन्द्र) थे। मेहरगढ़ में काल-II

ताम्रपाषाण चरण (5000 ई. पू.) का सूचक है जिसमें गेहूं और जौ की खेती के साथ-साथ कपास और अंगूर की खेती के भी साक्ष्य मिले हैं। सम्भवत: हड़प्पा निवासियों ने गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारंभिक पूर्वजों से प्राप्त किया होगा। (हड़प्पा निवासियों के लिए अगला खंड देखें)। अत: मेहरगढ़ से प्राप्त इस साक्ष्य के कारण इस सिद्धान्त को संशोधित करना पड़ेगा कि कृषि और पशुओं को पालने का कार्य भारतीय उपमहाद्वीप की ओर पश्चिम एशिया से फैला।

4.4.2 काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति

काश्मीर घाटी में ग्राम बस्तियों का लगभग 2500 ई. पू. में आविर्भाव हुआ बुर्जहोम और गुफ़कराल में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस क्षेत्र के नवपाषाण चरण को बुर्ज़होम में दो चरणों में और गुफ़कराल में तीन चरणो में वर्गीकृत किया गया है। उत्तरवर्ती स्थल पर सबसे प्रारंभिक अमृद्भांड (पुरा मृद्भांड यानि सबसे पुराने मिट्टी के बर्तन) चरण है जो भारत में पहली बार खोजा गया है। काश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है गर्त आवास, अच्छी तरह बनाए गए और गेरू से रंगे फर्श और साथ ही खुले में भी आवास और बड़ी मात्रा में प्राप्त हड्डी के अद्वितीय औज़ारों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह अर्थव्यवस्था प्रधानत: आखेट अर्थव्यवस्था थी।

गुफ़कराल में, चरण-I में फलियों मसूर,अरहर, गेहूं और जौ के जले हुए अन्न कण प्राप्त हुए हैं और साथ ही मवेशियों, भेड़-बकरियों, साकिन, लाल मृग और भेड़िया जैसे पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं। चरण-II और चरण-III की विशेषता है कि उनमें वनस्पति कृषीकरण और पाले गए जानवरों के साक्ष्य मिले हैं। उत्तरवर्ती चरणों से जो अन्य उल्लेखनीय वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें लम्बी आदिम कुल्हाड़ियां, प्रस्तर नोकें, परिष्कृत हड्डी के औज़ार (मत्स्य भाले, बाणाग्र आदि) और छिद्रित हार्वेस्टर शामिल हैं। मानव शवाधानों के बीच कुत्तों के शवाधान भी मिले हैं। इनसे पता चलता है कि चरण- I की अनिवार्य आखेट-संग्राहक अर्थव्यवस्था का किस प्रकार धीरे-धीरे चरण-II में सुस्थापित कृषि अर्थव्यवस्था में विकास हो गया।

9. रहने का स्थान (बुर्जहोम)

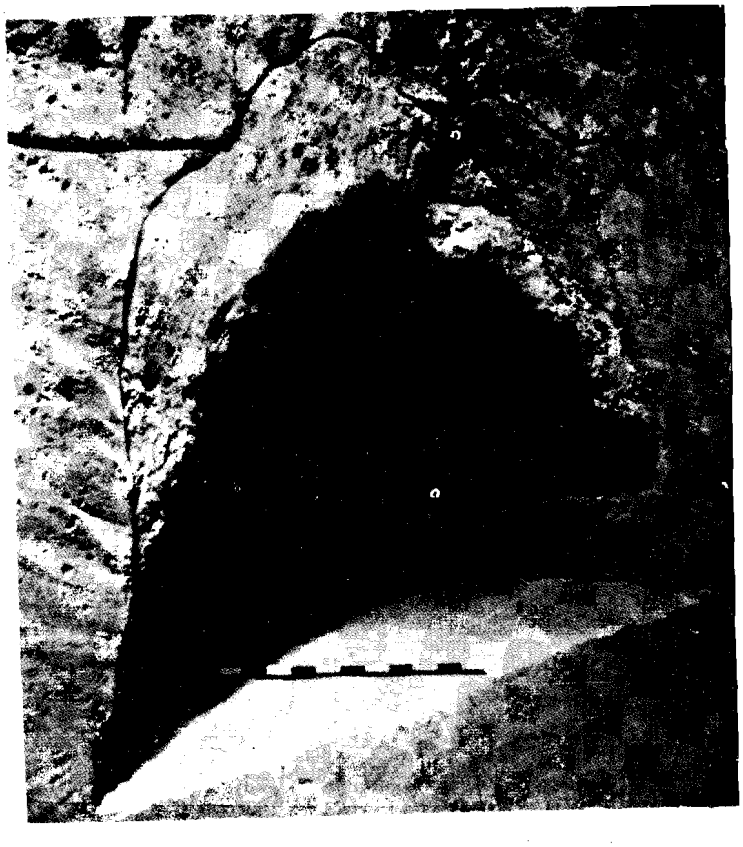

10. दो रहने के स्थानों को मिलाने वाला गलियारा (बुर्जहोम)

यहां यह उल्लेखनीय है कि बुर्ज़होम की नवपाषाण संस्कृति का मृदभांड, हड्डी और पत्थर की वस्तुओं में स्वात घाटी के सराय खोला और घाली गई के साथ सादृश्य प्रकट होता है। गर्त आवास, हार्वेस्टर और कुत्तों के शवाधान उत्तर चीनी नवपाषाण संस्कृति की विशेषताएं हैं। बुर्ज़होम में प्राप्त मृदभांडों से संकेत मिलता है कि इनका पूर्व हड़प्पा निवासियों से भी सम्पर्क था।

दो स्थलों से उपलब्ध सी-14 तिथि-निर्धारणों से संकेत मिलता है कि काश्मीर घाटी में नवपाषाण संस्कृति की समय अवधि 2500–1500 ई. पू. थी।

4.4.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान

बेलान नदी पूर्व से पश्चिम की ओर विंध्य पठार दृश्यांश के किनारे के साथ-साथ बहती है। यह टोंस नदी की उप-नदी है, जो इलाहाबाद के पास गंगा में मिलती है। यह क्षेत्र मानसून मेलखा का एक भाग है। सारे क्षेत्र में सागौन (टीक), बांस और ढाक के घने जंगल हैं। ये जंगल, बाघ, नीलगाय, चीतल आदि जैसे वन्य पशुओं के प्राकृतिक आवास हैं तथा यहां घनी घास, जंगली चावल सहित, उगी हुई है। अनुपुरापाषाण-काल तक से यह स्थान प्रारंभिक पाषाण युग के लोगों का प्रिय आखेट स्थल रहा है। बेलान घाटी के सम्बद्ध उत्खनन स्थल, जिनसे अन्न संग्रह चरण से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण के संकेत मिलते हैं, चौपानी-मांडो, कोल्डीरोवा और महागरा हैं।

पुरातत्वविदों ने चौपानी-मांडो में अनुपुरापाषाण काल से उत्तरवर्ती मध्य पाषाण युग अथवा आद्य नवपाषाण युग तक का तीन चरणों का अनुक्रम सिद्ध किया है। चरण-III (उन्नत मध्य

11. मधुमक्खी के छत्ते जैसी झोपड़ी

पाषाण युग) की विशेषता है कि अर्द्ध स्थानबद्ध सामुदायिक जीवन तथा विशिष्ट आखेट-संग्रह अर्थव्यवस्था। यहां मधुमक्खी के छत्ते जैसे झोपड़ियां, साझा चूल्हे, असुबाहय निहाई, ज्यामितीय आकार के सूक्ष्म पाषाण, औज़ार बड़ी संख्या में वलय-पत्थर, और हाथ से बने सुन्दर मिट्टी के बर्तन मिले थे। आकार और प्रकार में अनेक तरह की चक्कियां और लोढ़े इस बात के परिचायक हैं कि उस समय अधिक ज़ोर अन्न संग्रह पर दिया जाता था। इस चरण में जंगली चावल और जंगली मवेशियों, भेड़ और बकरियों की हड्डियों के महत्वपूर्ण प्रमाण भी मिले हैं।

एकल संस्कृति स्थल ऐसा पुरातात्विक स्थल है जहां नवपाषाण या ताम्रपाषाण जैसे संस्कृति के एकल चरण में ही बस्ती थीं। यदि एक स्थल से, उत्खनन के बाद, पता चलता है कि इसमें नवपाषाण, ताम्रपाषाण अथवा लोहे के प्रयोग के चरणों में बस्ती थीं तो इसे बहु-संस्कृति स्थल कहा जाएगा और नवपाषाण चरण को प्रथम काल, ताम्रपाषाण चरण को द्वितीय काल तथा लोहे के प्रयोग के चरण को तृतीय काल कहा जाएगा। इन कालों से उस स्थल की संस्कृतियों का काल अनुक्रम प्रदर्शित होगा।

कोल्डीहवा में उत्खननों से त्रिविधि सांस्कृतिक अनुक्रम (नवपाषाण, ताम्रपाषाण, और लौह युग) का पता चलता है। महागरा एकल संस्कृति (नवपाषाण) स्थल है। इन दोनों स्थलों से प्राप्त संयुक्त साक्ष्य से स्थानबद्ध जीवन, चावल (**ऑरीज़ा सेटीवा**) उगाने, और मवेशी तथा भेड़-बकरी पालने के संकेत मिले हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य वस्तुएं हैं:

- रज्जु-चिन्हित मृदभांड
- गोल आदिम कुल्हाड़ियां और वसूले, आयताकार अथवा अंडाकार अनुप्रस्थ काट तथा केल्सेडोनी फलकों सहित
- वृत्ताकार/अंडाकार फर्श – हस्तकृतियों सहित
- बड़ा मवेशी बाड़ा – मवेशियों के खुरों के निशान सहित भी महागरा स्थलों से मिले हैं।

बेलान घाटी की नवपाषाण संस्कृति से विकसित और उन्नत स्थानबद्ध जीवन का, निम्नलिखित के साथ, पता चलता है:

- निश्चित परिवार इकाइयां
- मृद्भांड के रूपों का मानकीकरण
- चक्कियों और लोढ़ों जैसी खाद्य संसाधन इकाइयों का सुबाहय आकार
- छैनी, कुल्हाड़ियों और बसूलों जैसे विशिष्ट औज़ार
- कृषीकृत चावल की खेती
- मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े पालना

यह सुझाया गया है कि बेलान घाटी के नवपाषाण कालीन किसानों का भारत (छठा सहस्राब्द ई. पू.) सबसे प्रारंभिक चावल उगाने वाले समुदाय के रूप में उदय हुआ, यद्यपि यह सुझाव सभी को मान्य नहीं है। संग्रहण अर्थव्यवस्था से कृषि अर्थव्यवस्था में संक्रमण के भी इस क्षेत्र में स्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। फिर भी, मृद्भांड चोपानी-मांडों में (नवां-आठवां सहस्राब्दि ई. पू.) उत्तरवर्ती मध्य पाषाण/आद्य नवपाषाण चरण में दिखाई दिए हैं। यह इस बात का सूचक है कि मृदभांड बनाने का काम कृषीकरण (चावल) और पशु (मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े) पालने के कार्य से पहले शुरू हो गया था।

चोपानी मांडो में संसार में मृद्भांड के इस्तेमाल के सबसे प्राचीन साक्ष्य मिले हैं।

4.4.4 बिहार/मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति

सभी वनस्पति तथा जीव-जन्तु साधनों से सम्पन्न निचली मध्य गंगा घाटी में बहुत बाद में (2000–1600 ई. पू.) ग्रामीण बस्तियां बसीं। चिरांद, चेचर, सेनुआर और तारादिब आदि में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र के नवपाषाण कालीन लोगों के जीवन स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सेनुआर (ज़िला रोहतास) में नवपाषाण कालीन किसान चावल, जौ, मटर, मसूर और कुछ मोटे अनाजों की खेती करते थे। इस स्थल से गेहूं और घास मटर की अनेक किस्में बस्ती के उच्च स्तरों से प्राप्त हुई हैं। चिरांद (ज़िला सारन), जो गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है, में कच्चे फर्शों, मृद्भांडों, सूक्ष्म पाषाणों, घर्षित कुल्हाडियों, हड्डी के औज़ारों, उपरत्नों के मनकों और पकी मिट्टी (टेराकोटा) की मानव

मूर्तिकाओं के संरचनात्मक अवशेष मिले हैं। चिरांद और सेनुआर दोनों अपने उल्लेखनीय हड्डी के औज़ारों के लिए प्रसिद्ध हैं। चिरांद में जो अनाज उगाए जाते थे वे थे गेहूं, जौ, चावल और मसूर।

सेनुआर में उत्तरवर्ती नवपाषाण-ताम्रपाषाण कालीन लोगों ने अपने से पहले के लोगों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के अलावा चने और मूंग की खेती भी शुरू कर दी थी।

4.4.5 पूर्वी भारत के प्रारम्भिक किसान

इस क्षेत्र में उत्तरी कछार को मिलाकर असम की पहाड़ियां और गारो तथा नागा पहाड़ियां आती हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत वर्षा वाले मानसून क्षेत्र में आता है।

इस क्षेत्र की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है स्कंधयुक्त कुल्हाड़ियां, गोलाकार छोटे घर्षित कुल्हाड़े, रज्जु चिन्हित मृद्भांड जिनपर बहुत अधिक स्फटिक कण चिपकाए गए होते थे। उत्तरी कछार पहाड़ियों में देवजाली हाडिंग में किए गए उत्खननों से ऊपर बताई गई सभी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। ये वस्तुएं इन प्रकारों की हैं जो चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। फिर भी, असम के नवपाषाण विशेषकों का चीन अथवा दक्षिण पूर्व एशिया से सादृश्य अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो सका है क्योंकि इनमें बहुत अधिक कालानुक्रमिक अंतर है। असम के नवपाषाण संस्कृति चरण का तिथि निर्धारण अस्थायी रूप से 2000 ई. पू. के आसपास किया गया है।

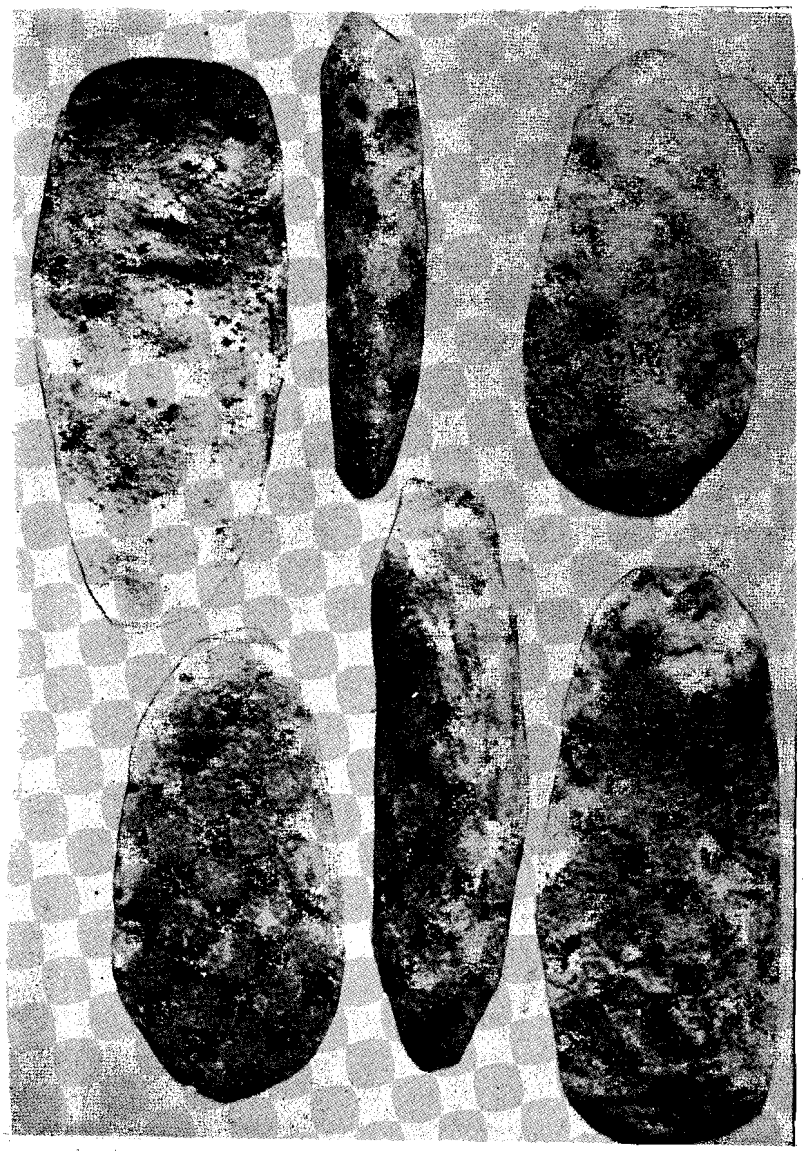

12. आसाम की गारो पहाड़ियों से प्राप्त पत्थर की कुल्हाड़ियां

4.4.6 दक्षिण भारत के प्रारम्भिक किसान

दक्षिण भारत में उन्नत आखेट अर्थव्यवस्था चरण से खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था चरण में संक्रमण की समस्या अभी तक स्पष्ट रूप में सिद्ध नहीं की जा सकी है। नवपाषाण कालीन बस्तियां पहाड़ी और शुष्क दक्खन पठार पर पाई गई हैं, जहां से भीम, कृष्ण, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों को जल प्राप्त होता है। यह बस्तियां खास तौर पर उन क्षेत्रों में फली-फूलीं, जहां सामान्य वर्षा प्रति वर्ष 25 सेंटीमीटर से कम होती है। दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले उत्खनित स्थल हैं सनगनकल्लू, नागार्जुन कोंडा, मस्की, बुधगिरि, टेक्कालकोटा, पिकलीहाल, कुपगल, हल्लूर, पलवाय, हेमीजे और टी. नरसीपुर।

पुरातत्वविदों ने दक्षिण भारतीय नवपाषाण संस्कृति को तीन चरणों में वर्गीकृत किया है। सबसे प्रारंभिक चरण के साक्ष्य सनगनकल्लू और नागार्जुन कोंडा में मिलते हैं। नागार्जुन कोंडा में प्राप्त आवासों के धुंधले चिन्ह, लेपित बाहरी सतहों वाले अपरिष्कृत हस्त-निर्मित पीले रक्ताभ भूरे मृद्भांड, चकमक के फलक औज़ार और घर्षित पत्थर के औज़ारों से प्रदर्शित होता है कि लोगों को खेती का केवल अल्प-विकसित ज्ञान था। संभवत: वे जानवर नहीं पालते थे। इस चरण का तिथि निर्धारण 2500 ई. पू. अथवा इससे पहले किया जा सकता है।

चरण-II में, चरण-I के लक्षण तो जारी रहे ही, मृद्भांड मुख्यत: लाल भांड बनावट के थे। तथापि मणिकारी कला और पशु पालना नए लक्षण हैं। अब सूक्ष्म पत्थर स्फटिक क्रिस्टलों के बनने लगे थे।

चरण- III में (तिथि निर्धारण 1500 ई. पू. के आसपास) धूसर भांड प्रमुख हैं। चरण- II के लाल भांड और लघु फलक उद्योग इस चरण में भी जारी रहे। विभिन्न प्रकारों के नवपाषाण औज़ार भी इस चरण में पाए जाते हैं। ये इस बात का संकेत देते हैं कि खेती का काम अधिक किया जा रहा था और भोजन संग्रह तथा आखेट की अब गौण भूमिका रह गई थी।

बाद के दोनों चरणों की विशेषता नागार्जुन कोंडा में आवास गर्तों से लक्षित होती है जिनकी छतों को संभालने के लिए लकड़ी के लट्ठों का इस्तेमाल किया गया था। अन्य स्थलों पर नरकुल और मिट्टी के मकानों के अवशेष भी मिले हैं।

दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा उगाई गई सबसे पहली फसलों में मिलेट (रागी) की फसल थी। इसकी खेती आज भी होती है ओर गरीब लोगों के भोजन का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह मवेशियों के लिए चारे के रूप में भी इस्तेमाल की जाती है। सामान्यत: ऐसा विश्वास किया जाता है कि कृषीकृत रागी पूर्व अफ्रीका से आई। जंगली रागी, जो कृषीकृत रागी के साथ-साथ खरपतवार के रूप में उग जाती थी, कृषीकृत रागी की पूर्वज नहीं थी। लेकिन जंगली रागी पूर्वज परम्परा से अफ्रीकी किस्म से सम्बद्ध थी। दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा जिन फसलों की खेती की जाती थी वे थीं — गेहूं, कुलथी, और मूंग। खजूर भी उगाई जाती थी। लगता है कि इस काल के दौरान सौपान-कृषि खेती की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही होगी। इसका उपयोग फसलें उगाने के लिए छोटे-छोटे खेत बनाने के लिए किया जाता था।

उत्खननों के प्राप्त पशुओं की हड्डियों के स्वरूप यह संकेत देते हैं कि पशुओं का उपयोग भार वहन करने के लिए अथवा भारी सामग्री खींचने के लिए तथा खेतों में हल चलाने के लिए किया जाता था। नागार्जुन कोंडा में किए गए उत्खननों से स्पष्ट है कि वनस्पति कृषीकरण पशुओं को पालने से पहले ही शुरू हो गया था। इन स्थलों से मवेशी, भेड़ और बकरी, भैंस, गधा, मुर्गी, सूअर और घोड़े जैसे पाले गए पशुओं की भी सूचना मिली है। सांभर मृग, बारहसिंगा, चित्तीदार मृग और चिकारा का शिकार किया जाता था तथा घोंघा और कछुए भोजन के लिए पकड़े जाते थे।

प्रचुर मात्रा में मवेशी और अन्य प्रकार की खाद्य वस्तुओं से संकेत मिलता है कि नवपाषाण कालीन लोगों की स्थानबद्ध कृषि तथा पशुचारण अर्थव्यवस्था थी। सी- 14

तिथि निर्धारणों के आधार पर दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति का तिथि निर्धारण 2600 और 1000 ई. पू. के बीच किया गया है।

उत्नूर, कोडेकाल और कुपगल जैसे नवपाषाण स्थलों के पास अनेक राख के टीले मिले हैं। इनमें से कुछ बस्तियों से दूर जंगलों में भी मिले हैं। सुझाया गया है कि यह राख के टीले नवपाषाण कालीन मवेशी बाड़ों के स्थल थे। समय-समय पर, इकट्ठा हो गया गोबर या तो किसी संस्कार के रूप में अथवा दुर्घटनावश जलता रहा। अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ स्थानों पर पाए गए राख के ढेर इस बात का संकेत देते हैं कि लोग कुछ खास मौसमों में जंगलों के पशु-चारण स्थानों पर चले जाया करते थे।

4.4.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति

कृष्णा और गोदावरी तथा उनकी सहायक नदियों के मध्य और ऊपरी विस्तारों में चित्र कुछ और ही हैं। इन क्षेत्रों में, काले पाश पर बनाए गए घर्षित पत्थर के औज़ारों के अलावा, बड़ी संख्या में समांतर पक्षीय फलक तथा गोमदे, केल्सेडोनी और इंद्र गोप मणि (सभी उपरत्न) के सूक्ष्म पाषाण धूसर भांडों और ताम्रपाषाण प्रकार के चित्रित मृद्भांडों के साथ मिले हैं। इस क्षेत्र से नवपाषाण चरण के कोई स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। लेकिन कृष्णा नदी की सहायक नदी भीमा पर चंदोली से प्राप्त साक्ष्य और गोदावरी की सहायक नदी प्रवरा पर नेवासा और दाइमाबाद स्थलों से प्राप्त साक्ष्य इस बात का संकेत देते हैं कि इस क्षेत्र में नवपाषाण किसान ताम्रपाषाण चरण में प्रवेश कर गए थे।

उत्तर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और गुजरात की ताप्ती और नर्मदा घाटियों के उत्तर में और आगे नवपाषाण चरण के स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। केवल बीना घाटी में ऐरान स्थल पर और दक्षिण गुजरात में जोखा स्थल पर पाई गई दक्षिण भारत सादृश्य की नुकीले कुंदा सिरों वाली त्रिभुजाकार कुछ कुल्हाड़ियां ही इस क्षेत्र में नवपाषाण कालीन अवशेष हैं।

चम्बल, बनास, और काली सिंध घाटियों में घर्षित पत्थर के औज़ारों की विद्यमानता का शायद ही कोई प्रमाण हो। इस तथ्य के बावजूद कि प्रारंभिक मध्य पाषाण संदर्भ में पशु पालने का काम शुरू हो गया था, स्थानबद्ध बस्तियां इस क्षेत्र में केवल तभी शुरू हुई जब ताम्र कांस्य उपकरण ज्ञात हुए।

बोध प्रश्न 2

1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति की मुख्य विशेषता पर लगभग दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2 निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है या गलत ? (✓) या (×) का चिह्न लगाइए।

i) यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा निवासियों ने गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारम्भिक निवासियों से प्राप्त किया था। ( )

ii) गुफराल में, कृषीकृत वनस्पति और पालतू जानवरों के कोई साक्ष्य नहीं मिलते। ( )

iii) बेलान घाटी स्थलों पर उत्खननों से हमें अन्न संग्रह से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण का स्वरूप निर्धारित करने में सहायता प्राप्त हुई है। ( )

iv) एकल संस्कृति स्थल का अर्थ है एक सांस्कृतिक स्थल में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन। ( )

v) दक्षिण भारत में सबसे पहले जो फसल उगाई गई थी, वह थी मिलेट (रागी)। ( )

vi) कछार पहाड़ियों में हुए उत्खननों से नवपाषाण संस्कृति के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। ( )

3 मृद्भांड, घर्षित पत्थर के औज़ार और कच्चे मकानों के अवशेष मानव समाज के विकास के सम्बन्ध में क्या संकेत देते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 सारांश

इस इकाई से आपको उस चरण के मूल लक्षणों की जानकारी प्राप्त हुई है जिसकी विशेषता है वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने में संक्रमण आखेट/संग्रहण से खेती में संक्रमण से अनेक परिवर्तन आए। सामान्य शब्दों में, इनमें मृद्भांडों को बढ़िया बनाना, क्योंकि इन भांडों की अन्न संग्रह के लिए भी आवश्यकता थी और उनसे संसाधित भोजन खाने के लिए भी आवश्यकता थी, परिष्कृत औज़ार जो घर्षित थे और कृषि कार्यों के लिए कारगर थे, व्यवस्थित ग्राम समुदाय आदि शामिल थे।

आधुनिक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि सबसे पहले खेती का काम नील घाटी में शुरू हुआ और पश्चिम एशिया में यह कार्य बाद में हुए। कुछ क्षेत्रों में खेती और जानवरों को पालने का काम साथ-साथ हुआ, जबकि कुछ क्षेत्रों में खेती का काम जानवरों को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

इस इकाई में आप उन भौगोलिक क्षेत्रों से भी परिचत हुए हैं जिन क्षेत्रों में भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इन क्षेत्रों में नवपाषाण संस्कृतियों का उदय भिन्न-भिन्न समयों में हुआ और उनकी अवधि भी अलग-अलग थी। उपमहाद्वीप के भीतर ही पारस्थितिक अन्तरों के कारण, उगाई जाने वाली फसलें भी अलग-अलग थीं। पुरातत्वविदों ने विभिन्न प्राचीन स्थलों पर व्यापक उत्खननों से नवपाषाण संस्कृतियों के आविर्भाव और उनमें अन्तरों पर भी प्रकाश डाला है।

4.6 शब्दावली

शिकारी/संग्रहक: मानव विकास की वह अवस्था जब मनुष्य अपना भोजन शिकार करके अथवा जंगलों से कंद-मूल इकट्ठा करके प्राप्त करता था।

अनुपुरापाषाण काल: मानव द्वारा पत्थर के औज़ारों के प्रयोग का प्रारंभिक काल।

मृद्भांड: मिट्टी के बर्तन।

प्रारंभिक कृषि: मानव द्वारा जंगली पौधों का स्वयं कृषि द्वारा उत्पादन आरम्भ करना।

प्रारंभिक प्राचीन कृषक: वह मानव समूह जिन्होंने सबसे पहले कृषि करना शुरू किया।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 आपके उत्तर में ये शामिल होने चाहिए:
गेहूं, जौ आदि की खेती के माध्यम से आखेटक/संग्राहक से अन्न उत्पादन विधि में परिवर्तन, व्यवस्थित ग्राम जीवन, पत्थर के औज़ार बनाने में प्रगति, मृद्भांड की शुरुआत आदि। देखें भाग 4.2 ।

2 ये थीं — वनस्पति कृषीकरण और जानवर पालने का काम आवश्यक तौर पर अंत:सम्बद्ध नहीं थे; अन्न उत्पादन का कार्य संभवत: नवपाषाण संस्कृति से पहले शुरू हो गया था, आदि। देखें उपभाग 4.3.1

3 i) आत्मनिर्भर, ii) घर्षित पत्थर, iii) कच्ची किलेबंदी, iv) बड़ा, तुर्की

बोध प्रश्न 2

1 देखें उपभाग 4.4.1

2) i) ✓, ii) ×, iii) ✓, iv) ×, v) ✓, vi) ×

3 इसका उत्तर देने के लिए आपको अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेना होगा। ये सभी उस प्रक्रिया का संकेत करते हैं, जिसके दौरान मानव सीधे समाजों से जटिल समाजों की ओर बढ़ रहा था; श्रम का विभाजन, टेक्नोलॉजी में विकास, आवश्यकता पर आधारित अन्वेषण आदि आपके उत्तर के लिए कुछ संकेत हैं।